www.thearyasamaj.org

नूतन निष्काम पत्रिका

नूतन निष्काम पत्रिका * वर्ष-८ * अंक-१ * मुम्बई * जनवरी-२०१७ * मूल्य-रु.९/-

स्थापना वर्ष:१९४२

आओ सेवा करे

(कृपया देखें सम्पादकीय)

www.thearyasamaj.org

ECO FRIENDLY P. N. G. GREEN CREMATORIUM

पर्यावरण युक्त पाइप लाइन नेचुरल गैस, हरित दाह स्थान

* Beautification & landscape of existing burial grounds & compound.
* Audio System. Wi-Fi system with CCTV.
* Arrangements for storage of Asthi, A.C. Coffins & Folding Stretchers.
* Renovation, Beautification & landscape of existing entire burial grounds and compound.

You would be happy to know that construction of project of Green Crematorium-Piped Natural Gas Crematorium - A Project of Senior Citizen Santacruz (Paschim) Sanstha as an extension to existing Hindu Smashan Bhoomi is completed and Occupation Permission Permission is granted by M.C.G.M. and is now open for cremations. This Crematorium is named as कुमुदवेन न्यालचंद वोरा (मोरवी निवासी) ''शांति स्थल'' This is one of its kind for BMC Crematoriums in Mumbai, it is Eco Friendly as well as energy saving According to rough estimate, at Santacruz Crematorium Minimum 1,800 trees per year are required in existing wood pyre crematorium. The Piped Natural Gas Crematorium helps in saving the trees, will minimize air pollution and also save huge amount of electricity. Thus, the Green Crematorium will meet need of the day and help in improving the envionment.

Salient Features of the project :

* Building of 5,000 sq. ft. with 18' height & seating arrangement for 150 persons.
* Latest two furnaces manufactured & installed by M/s. Ador Welding Ltd., Pune.

Special highlights of the Eco Friendly model project of P.N.G. "GREEN CREMA TORIUM"

* P. N. G. cremation will be free of charge for all sections of the society.
* Per cremation only 10 gms. of Ghee & maximum five Samidha (Wood Sticks) to be used and will be made available free of cost by Sanstha.
* Hearse services will be available free of charge between Bandra (West) & Andheri (West) from 8 a.m. to 8 p.m.

We are thankful to Advocate Shri Ashish Shelar (M.L.A.), Mumbai and Smt. Alka Kerkar (Dy. Mayor) who has wholeheartedly supported this model project. We also express our heartfelt thanks to all our Donors, without their help this model project would not have come.

Bharat Shah
President

www.thearyasamaj.org

आर्य समाज सांताक्रुज़, मुम्बई का मासिक मुखपत्र
वर्ष : ८ अंक १ (जनवरी-२०१७)

- दयानंदाब्द : १९३, विक्रम सम्वत् : २०७३
- सृष्टि सम्वत् : १,९६,०८,५३,११७

प्रबन्ध संपादक : चन्द्रगुप्त आर्य
संपादक : संगीत आर्य
सह संपादक : संदीप आर्य
कार्यकारी संपादक : विनोद कुमार शास्त्री
लालचन्द आर्य, रमेश सिंह आर्य,
यशबाला गुप्ता.

विज्ञापन की दरें : शुल्क

- पूरा पृष्ठ : रु. ३,०००/- • एक प्रति : रु. ९/-
- १/२ पृष्ठ : रु. २,०००/- • वार्षिक : रु. १००/-
- १/४ पृष्ठ : रु. १,५००/- • आजीवन : रु. १०००/-
- विशेषांक की दरें भिन्न होंगी ।

वर्गीकृत विज्ञापन

रु. १०/- प्रति शब्द, न्यूनतम रु. ५००/-

चैक/डीडी/मनी आर्डर आदि 'आर्य समाज सान्ताक्रुज' के नाम से ही भेजें, मुंबई के बाहर के चैक न भेजे। विज्ञापन सामग्री १० तारीख तक भेजें। 'नूतन निष्काम पत्रिका' का मुद्रण ऑफसेट विधि से होता है।

पता : आर्य समाज सांताक्रुज़
(विठ्ठलभाई पटेल मार्ग) लिंकिंग रोड, सांताक्रुज़ (प.),
मुंबई -५४. फोन : २६६० २८००, २६६० २०७५

अनुक्रमणिका	पृष्ठ सं.
पर्यावरण युक्त पाइप लाइन नेचुरल गैस, हरित..	२
सम्पादकीय	३
दयालु दयानन्द	४-५
महर्षि विरजानन्द जी द्वारा शिष्ट दयानन्द से ...	६-७
धम भहीद-बाल हकीकतराय	८
युग नायक महर्षि दयानन्द सरस्वती	८
वेदाध्ययन द्वारा आयु	९
चाणक्य नीति दर्पण	१०-११
साध्य-साधक-साधन का चिन्तन	१२-१३
क्या हम भाग्य को बदल सकते हैं?	१४-१६

सम्पादकीय

आओ ! सेवा करें

महर्षि दयानन्द सरस्वती ने अजमेर में परोपकारिणी सभा की स्थापना की थी कि जिससे उनके बाद भी वेदों का प्रचार-प्रसार होता रहे। उस स्वीकारपत्र में नियम शीर्षक के अन्तर्गत् महर्षि के वाक्यों को हम यहां उद्धृत कर रहे हैं।

नियम-

उक्त सभा जैसे कि वर्त्तमानकाल वा आपात्-काल में नियमानुसार मेरी और समस्त पदार्थों की रक्षा करके सर्वहितकारी कार्य में लगती है वैसे मेरे पश्चात् अर्थात् मेरे मृत्यु के पीछे भी लगाया करे-

प्रथम - वेद और वेदाङ्गादि शास्त्रों के प्रचार अर्थात् उनकी व्याख्या करने कराने पढ़ने पढ़ाने सुनने छपवाने आदि में।

द्वितीय - वेदोक्तधर्म के उपदेश और शिक्षा अर्थात् उपदेशक मण्डली नियत करके देश-देशान्तर और द्वीप द्वीपान्तर में भेजकर सत्य के ग्रहण और असत्य के त्याग कराने आदि में।।

तृतीय- आर्यावर्तीय अनाथ और दीन मनुष्यों के संरक्षण पोषण और सुशिक्षा में व्यय करे और करावे।।

महर्षि दयानन्द सरस्वती के उपरोक्त तृतीय नियम को हृदयंगम् करते हुए आर्य समाज सान्ताक्रुज द्वारा प्रत्येक रविवार को आर्थिक रुप से विपन्न परिवारों के बच्चों के संरक्षण और पोषण की भावना से भोजन की व्यवस्था शुरू की गयी है। श्री राजन बाहरी के संयोजन में आर्य समाज सान्ताक्रुज की महिलायें एवं युवक इस सेवा के कार्य में सहयोग कर रहे हैं। आम जनता भी इस सेवा के कार्य में खुले दिल से दान कर रही है।

पाठकों के समक्ष सेवा के इस कार्य को रखने का उद्देश्य यही है कि हम कई बार आपस में यह कहते रहते हैं कि हमें बाहर निकलकर कार्य करना चाहिये। प्रत्येक नगर, ग्राम, कस्बे की स्थिति के अनुरूप किसी भी जनोपयोगी परोपकार को शुरू करके आर्य समाज जनमानस में अपनी छवि बना सकता है। स्मरण रहे आर्य समाज का छठा नियम भी यही कहता है। आज आवश्यकता है आर्य समाज अपनी भूमिका सुनिश्चित करे। अन्य मतावलम्बियों की तरह आर्य समाज सिर्फ तथाकथित कर्मकाण्ड तक ही सीमित न रह जाये । जिसके दुष्परिणामस्वरूप सम्प्रदाय/क्लब संस्कृति को बढ़ावा मिलता जाये और हम जनमानस से कटते चले जायें । कालान्तर में इसी वृत्ति/मानसिकता के लोग समाजों में हावी होकर अपने-अपने तरीके से समाज का शोषण करने लग जाते हैं। आर्य सान्ताक्रुज द्वारा शुरू किये गये इस सेवा के कार्य से निश्चित रूप से एक दिशा हम सबको मिली है।

- संगीत आर्य
9323 573 892

www.thearyasamaj.org

दयालु दयानन्द

स्वामी जगदीश्वरानन्द सरस्वती

महर्षि दयानन्द दया की तो जीवित-जागृत प्रतिमा ही थे। उनका तो नाम ही दया आरम्भ होता है। यदि ऋषि के सम्पूर्ण जीवन को एक वाक्य में कहना हो तो वे सिर से लेकर पैर तक सदय ही सदय थे।

संसार में अनेक प्रकार के व्यक्ति हैं। कोई काम में आनन्द लेता है तो कोई क्रोध में, कोई लोभ में आनन्द लेता है तो कोई मोह में, कोई प्रसिद्धि में आनन्द लेता है तो कोई कुल के बड़प्पन में। ऋषिराज इन सबसे निराले थे। संसार में आठ बेडियाँ प्रसिद्ध हैं-

घृणा शङ्का भयं लज्जा जुगुप्सा चेति पञ्चमी।
कुलं शील च मानं च अष्टौ पाशा प्रकीर्तिता:।।

अर्थात् घृणा, शङ्का, भय, लज्जा, निन्दा, कुलीनता, शील और अभिमान ये आठ पाश हैं। महर्षि ने इन सभी बेड़ियों को काट दिया था। वे इन सबसे ऊपर उठकर दया में आनन्द लिया करते थे। तभी तो वे दयानन्द थे।

एक विचारक ने लिखा है-

''भूख-प्यास पर विजय प्राप्त करके जो निरन्तर प्रभु-प्राप्ति की साधना में लीन रहते हैं, वे निस्संदेह महान् विभूतियाँ हैं, पर उसके भी महान् वे हैं जो अविवेकी व्यक्तियों के कटु वचन क्षमापूर्वक सह लेते हैं।''

ऋषि दयानन्द ऐसी ही महत्तम विभूतियों में से थे। एक उदाहरण लीजिये। कानुपर में एक गंगापुत्र स्वामी जी के समीप रहता था। वह प्रतिदिन प्रात: काल स्वामी जी के स्थान के पास आकर उन्हें गालियाँ सुनाया करता था। यह क्रम बीसियाँ दिन तक चलता रहा परन्तु स्वामी जी ने उससे कुछ भी नहीं कहा।

ऋषिराज के पास नित्यप्रति अनेक भक्त आया करते थे। उनमें से कोई लड्डू भेंट कर जाता तो कोई पेड़े चढ़ा जाता, कोई बादाम-मिश्री लाता तो कोई फल अर्पण कर जाता। स्वामी जी इन पदार्थों को प्रसाद - रूप में अपने सत्संगियों को वितरित कर दिया करते थे। एक दिन सायंकाल कुछ मिष्ठान्न पड़ा रह गया। वे सोच ही रहे थे ये भोज्य किसे दें कि उन्हें प्रतिदिन गालियाँ प्रदान करने वाला गंगापुत्र सामने से आता हुआ दिखाई दिया। उन्होंने आदरपूर्वक उसे अपने पास बुलाकर वह सारी खाद्य सामग्री उसे दे दी और उसे कहा कि तुम सायंकाल नित्य हमारे पास आया करो, हम तुम्हें प्रतिदिन खाद्य पदार्थ दिया करेंगे।

जब छ:सात दिन तक वह गंगापुत्र ऋषि के मिष्ठान्न पाता रहा और महाराज ने एक दिन भी उसकी गालियों की चर्चा नहीं चलाई तो उसे बड़ा ही पश्चात्ताप हुआ ओर अन्त में एक दिन महाराज के चरणों में आ पड़ा और आँखों में आँसू भरकर कहने लगा. ''भगवन्! यदि मेरी कठोरता का कोई अन्त नहीं तो आपकी सहनशीलता और दयालुता भी असीम है। आपकी सुजनता ने मेरी दुर्जनता को सर्वथा जीत लिया है। मैं अपने पिछले अपराधों के लिए क्षमा चाहता हूँ।''. ''हमने आपके वचनों को स्मृति में स्थान नहीं दिया है। आप भी उन बीती बातों को भूल जाईए।'' यह कहकर ऋषि ने उसे क्षमा कर दिया। धन्य है दयानन्द तेरी दया! उनकी दयालुता की कुछ और घटनाओं का रसास्वादन कीजिये-

प्रयाग में एक दिन ऋषिवर गंगा के तट पर बैठे हुए प्रकृति के सौन्दर्य का अवलोकन कर रहे थे। उन्होंने देख कि एक स्त्री मरा हुआ बच्चा हाथों पर उठाये गंगा में प्रतिष्ट हुई। कुछ गहरे जल में जाकर उसने बच्चे के शरीर पर लपेटा हुआ कपड़ा उतार लिया और बालक के शव को रोते और बिलखते हुए पानी में प्रवाहित कर दिया।

स्वामी जी इस दृश्य को देखकर अपने हृदय को न थाम सके। उन्होंने खेद-सागर में निमग्न होकर मन-ही-मन कहा कि भारत देश इतना निर्धन, इतना कंगाल है कि माता अपने कलेजे के टुकड़े को तो नदी में बहा चली है परन्तु उसने वस्त्र इसलिए 'नहीं बहाया कि उसका मिलना कठिन है। उन्होंने प्रण किया। कुछ काल तक मैं इन्हीं लोगों की भाषा में प्रचार करके दु:ख दूर करने का प्रयत्न करूँगा।

फर्रुखाबाद में महाराज श्री कालीचरण के उद्यान में बैठे हुए सत्सगियों की शंका का समाधान कर रहे थे। उसी समय एक स्त्री मरा हुआ बच्चा मैले-कुचैले वस्त्र में लपेटे लिये जाती दिखाई दी। महाराज ने पूछा, ''माई! आपने इस पर श्वेत, स्वच्छ वस्त्र क्यों नहीं लपेटा?'' उसने कराहकर कहा, ''महाराज ! मुझ धनहीन के पास स्वच्छ और नवीन वस्त्र कहाँ है जो इस पर डालती?'' उसके वचन सुनकर स्वामी जी की आँखों से अश्रुधारा प्रवाहित हो गई। दीन-हीन जनों को देखकर उनका हृदय पिघल जाया करता था और पिघलता भी क्यों न, थे जो सच्चे सन्त! तुलसीदास जी ने लिखा है-

सन्त हृदय नवनीत समाना।
कहा कविन्ह परि कहै न जाना।।
निज परिताप द्रवै नवीनता।
पर - दुख द्रवहिं सन्त सुपुनीता।।

वास्तव में-

सच्चा सन्त वही है जिसका
मानस पर - दुखों से पिघला।
औरों की आँखों का आँसू
जिसकी आँखों से बह निकला।।

ऋषिवर ऐसे ही सन्त थे। और देखिये-

फर्रुखाबाद में एक दिन स्वामी जी गंगा में पाँव फैलाए जल-विहार कर रहे थे। कुछ लड़के उन्हें देखकर आपस में कहने लगे-देखो ! कितना मोटा मनुष्य है! बस, उन्हें खेल सूझा और वे गीले रेत के गोले बना-बनाकर स्वामी जी पर मारने लगे। बालप्रेमी ऋषि राज बहुत देर तक तो

www.thearyasamaj.org

उन अबोध बालकों के क्रीड़ा-स्थल बने रहे, परन्तु जब बालुकण आँखों में पड़ने लगे तो वे उस स्थान से उठकर चले गए।

स्वामी जी महाराज अमृतसर की जनता को अपने मधुर उपदेशों से लाभान्वित कर रहे थे। एक दिन कुछ अबोध बच्चे स्वामी जी पर कंकर और पत्थर बरसाने लगे। पुलिस के कर्मचारियों ने अपने चातुर्य से उनमें से कुछ बच्चों को पकड़ लिया और व्याख्यान की समाप्ति पर महाराज के सामने उपस्थित किया। पुलिस के पंजे में पड़े हुऐ वे बालक आठ-आठ आँसू रोते थे। स्वामी जी ने उनकी धैर्य देकर कंकर मारने का कारण पूछा। तब वे हिचकियाँ लेते हुए बोले. ''हमको पण्डित जी ने कहा था कि तुम दयानन्द को ईंट मारना, हम तुम्हें लड्डू देंगे।''

स्वामी जी की करुणा उमड़ आई उन्होंने उसी समय लड्डू मँगवाकर बालकों में बाँटे और कहा, ''तुम्हारा अध्यापक तो सम्भव है तुम्हें लड्डू न दे. इसलिए मैं ही दिये देता हूँ।'' यह थी ऋषि की दया! ठीक ही है-

तुलसी सन्त सुअम्ब तरु, फूलें फलें पर-हेत।
इत ते ये पाहन हनें, उत ते वे फल देत।।

अथवा-

सज्जन को दु:खहु दिये, दुर्जन पूरै आस।
जैसे चन्दन को घिसे, सुन्दर देते सुवास।।

ऋषिराज कर्णवास में विराजमान थे। उन्हीं दिनों राव कर्णसिंह भी वहाँ स्नानार्थ आए। रात्रि में राव के उतारे पर रास होने लगा। स्वामी जी को भी उसमें आमन्त्रित किया गया, परन्तु उन्होंने ऐसे निन्दनीय कर्म में सम्मिलित होना अस्वीकार कर दिया। दूसरे दिन राव साहब स्वामी जी के पास आए और वितण्डा करने लगे। फिर गालियों पर उतर आए और बार-बार तलवार की मूठ पर हाथ धरने लगे। इस पर स्वामी जी ने हँसते हुए कहा, ''खड्ग को क्यों बार-बार संचालित करते हो? शास्त्रार्थ करना है तो अपने गुरु रंगाचार्य को यहाँ बुलवाइये, हम कटिबद्ध हैं। परन्तु यदि शस्त्रार्थ करने का चाव है तो संन्यासियों से क्यों टकराते हो? जयपुर-जोधपुर से जा भिड़ो:''

फिर क्या था! राव महाशय का पारा पूरे १०४ डिगरी पर पहुँच गया। उन्होंने तलवार निकाल ली और स्वामी जी पर लपके। स्वामी जी ने एक बार तो 'अरे धूर्त्त' कहते हुए उसे धकेल दिया और राव महाशय लुढ़क गए, परन्तु वे पुन: स्वामी जी पर झपटे। इस बार महाराज ने उसकी तलवार छीनकर प्रहार कर कहा, ''क्या तुम यह चाहते हो कि मैं भी आततायी पर प्रहार कर बदला लूँ? मैं संन्यासी हूँ, तुम्हारे किसी भी अत्याचार से चिढ़कर तुम्हारा अनिष्ट-चिन्तन नहीं करूंगा। जाओ, ईश्वर तुम्हें सुमति प्रदान करें।'' यह थी दयानन्द की दयालुता ! अपने घातक पर भी दया ! कैसा उज्जवल चरित्र है!

वज्रादपि कठोराणि मृदूनि कुसुमादपि।
लोकोत्तराणा चेतांसि को हि विज्ञातुमर्हति।

वज्र से भी कठोर और कुसुम से भी कोमल लोकोत्तर मनुष्यों के हृदय की थाह कौन पा सकता है?

अनूपशहर में ऋषि अपने वेदोपदेशों से लोगों में धर्म की भावनाएँ भर रहे थे। एक कपटी ब्राह्मण ने पान में विष दे दिया। महाराज ने सहज भाव से पान मुख में रख लिया। परन्तु उसका रस लेते ही जान गए क इसें विष है। फिर भी उन्होंने उससे एक शब्द भी नहीं कहा। हाँ, गंगा पर जाकर न्योली और वस्ती कर्म से विष-प्रवाह को दूर कर पुन: अपने आसन पर आ विराजे। स्वामी जी को विष देने का भेद वहाँ के तहसीलदार को भी लग गया। उन्होंने उस नराधम विषदाता को पकड़वाकर जेल में बन्द कर दिया। जब वे प्रसन्न होते हुए स्वामी जी के पास पहुँचे तो दयालु दयानन्द ने कहा, ''सैयद अहमद जी! आपने अच्छा नहीं किया। मैं संसार को छुड़वाते, कैद कराने नहीं आया अपितु बन्धनों से छुड़वाने आया हूँ। यदि दुष्ट अपनी दुष्टता को न छोड़े तो हम क्यों स्वश्रेष्ठता का परित्याग करें?'' अद्भुत थी दयानन्द तेरी दया! धन्य हो! धन्य थीं तुम्हारी माता और धन्य थे तुम्हारे पिता और धन्य थे तुम्हारे गुरुदेव !

स्वामी जी मनुष्यों से ही नहीं शत्रुओं से भी प्रेम करते थे। एक दिन स्वामी जी कोपीन मात्र धारण किये हुए सड़क पर जा रहे थे। मार्ग में कीचड़ था और एक गाड़ी के बैल उसमें फँस गए थे। गाडीवान बैलों को पीट रहा था, परन्तु बैल अपनी पूर्ण शक्ति लगाकर भी निकल नहीं पा रहे थे। यह दृश्य देखकर दयालु दयानन्द के हृदय में करुणा उमड़ आई। वे कीचड़ में उतरे। उन्होंने बैलों को खोल दिया और गाड़ी को खींचकर सड़क पर ला खड़ा किया। प्राणिमात्र के लिए दया की कैसी प्रबल भावना है! वे दूसरों को दु:ख में देखकर स्वयं दु:खी हो जाते थे।

काँटा लगे किसी को तड़पते हैं हम 'अमीर'।
सारे जहाँ का दर्द हमारे जिगर में है।।

अथवा-

काँटा औरों के लगे, तड़पे साधु समान।
सारे जग के दु:ख को, समझे अपनी जान।।

दयानन्द की दया का एक और उदाहरण देकर हम इस प्रसंग को समाप्त करेंगे। जोधपुर में विश्वासघाती पाचक ने दूध के साथ कालकूट विष पिला दिया। ऋषि को इसका ज्ञान हो गया। परन्तु उन्होंने उससे तू तक भी नहीं कहा अपितु दया दर्शाते हुए बोले, ''जगन्नाथ! लो ये कुछ रुपये हैं, मैं तुमको देता हूँ। यहां से भागकर शीघ्र नेपाल चले जाओ। यदि राठौरों को तेरी करतूत का पता लग गया तो तुम्हारी बोटी-बोटी उड़ा देंगे। जाओ, चुपचाप भाग जाओ''

अपने प्राणघातक के प्राण बचाने की चिन्ता अतिशय दयालु के अतिरिक्त और किसे हो सकती है? संसार के इतिहास में इस प्रकार का अन्य उदाहरण और किसी जीवन-चरित्र में नहीं मिलेगा। उन्हें चौदह बार विष दिया गया परन्तु दयानन्द ने किसी को दण्ड दिलाने का प्रयत्न नहीं किया। दयानन्द ने अपनी अद्भुत दया से अपने नाम को सार्थक कर दिया।

www.thearyasamaj.org

महर्षि विरजानन्द जी द्वारा शिष्य दयानन्द से समावर्तन पर अदभुत गुरु दक्षिणा मांगना

प. उम्मेद सिंह विशारद
मो. : ९४११५ १२०१९

भारत के इतिहास में ऐसी गुरुदक्षिणा पहले न मांगी गई और न भविष्य में मांगने की सम्भावना है।

अदभुत चिन्तन ऋषि विरजानन्द जी का

ईश्वर की सृष्टि में जब ऋत सत्य का सन्तुलन डगमगाने लगता है, तभी ऋत सत्य का सन्तुलन बनाने के लिये ईश्वरीय व्यवस्थानुसार इस धरती पर विलक्षण महापुरुषो का जन्म होता है। ऐसे ही दो महापुरुषो का भारत में इस युग में जन्म हुआ था, एक महर्षि विरजानन्द सरस्वती जी और दूसरे महर्षि दयानन्द सरस्वती जी हुए हैं। ऐसा निम्न चिन्तन कान्त दर्शी देवता की आत्मा में ही आ सकता है।

विलक्षण गुरु दक्षिणा मांगना

महापुरुषों का कार्य संसार को ऋत सत्य की ओर मोडना होता है। महर्षि विरजानन्द जी का मानवो का सुखी करने का चिन्तन सर्व प्रथम यह था कि भारत की गुलामी के निम्न कारण है और संसार को इसका ज्ञान कराना आवश्यक है। संसार सर्व शक्तिमान ईश्वर को भूलता जा रहा है और उसकी जगह मनुष्य रुपी तथा कथित भगवानों की पूजा कर रहा है। ईश्वरीय वाणी वेदों को भूल कर अनेक पाखण्डों में फंस गया है, वैदिक धर्म के स्थान पर अनेक अलग-अलग मतों को स्थापित करके उसको धर्म कह कर सामान्य जनता को भटका रहा है। ऋषियों द्वारा आर्ष ग्रन्थों को न मान कर अनार्ष ग्रन्थों को मान कर संसार को भ्रमित कर रहा है। सामाजिक अन्धविश्वासो में नारी को पढने का अधिकार नहीं है शूद्रो को पढने का अधिकार नहीं है। जाति-पाति छूआ-छूत का प्रचार करना आदि अनेक सामाजिक कुरुतियों द्वारा समाज का पथ भ्रष्ट करना। वीरो व राजाओं को सत्य शास्त्र व शस्त्र विद्या का मार्ग न बताकर बुतों की पूजा करके राष्ट्र रक्षा करने की शिक्षा न देना, तथा अनेक धर्मिक अन्धविश्वासों के मानने वा मनवाने से हमारा राष्ट्र भारत वर्ष सदियों से आन्तिरक व विदेशियों का गुलाम हो रखा है। **जाओ दयानन्द इन बुराइयों से देश को स्वतन्त्र कराओ व बचाओ, यही मेरी गुरु दक्षिणा होती।**

ऋषि विरजानन्द का संक्षिप्त जीवन परिचय

गुरु विरजानन्द जी का जन्म १७७९ में पंजाब के करतारपुर के निकट ग्राम गंगापुर में हुआ था। पांच वर्ष की अल्प आयु में ये चेचक के कारण नेत्र दृष्टि से हीन हो गये थे। और तेरह वर्ष की आयु में माता-पिता की छत्र-छाया से भी वंचित हो गये थे। इन सभी बाधाओ के होते हुए भी उन्होने साहस और धैर्य का पल्लू नहीं छोडा। और अपने युग के संस्कृत व्याकरण के अद्वितीय विद्वान बने।

अष्टाध्यायी अध्ययन का पुन: उद्धार करने और आर्ष पद्धति का आविष्कार करके इतिहास में अपना स्थान बनाया। वे राष्ट्र भक्ति निर्भयता और आत्म सम्मान व आर्ष पद्धति के दिव्य मूर्ति थे। उन्होने युगो के पश्चात वेदो को स्वत: प्रमाण घोषित किया, और निरुक्त, शास्त्र, महाभाष्य, अष्टाध्यायी के माध्यम से वेदों के ईश्वर परक अर्थ बताये। और विश्व को महर्षि दयानन्द जैसा महान शिष्य दिया। जिन्होने आगे चलकर १८७५ में मुम्बई में आर्य समाज की स्थापना की। और दयानन्द जी ने भारत की प्रसुप्त आत्मा को जगाया। और मानव जाति को वेदो का संदेश दिया। ऋषि विरजानन्द जी ने संसार को आर्ष व अनार्ष सहित्य का ज्ञान का उपदेश देकर बृहद कल्याण किया जो आगे चलकर सामाजिक जगत में अमूल परिवर्तन का कारण सिद्ध हुआ।

महर्षि दयानन्द जी का संक्षिप्त परिचय व कार्य

ऋषि दयानन्द का जन्म (१८२४-१८३३ ईसवी) मे भारत के कठियावाड प्रान्त के मोरेवी राज्य के टंकारा ग्राम में हुआ था। पिता का नाम कर्सन लाल जी त्रिवेदी था। वे ओदिच्य ब्राह्मण थे। उनका बचपन का नाम मूलशंकर था, सन्यास लेने के बाद उनका नाम दयानन्द हुआ १४ वर्ष की आयु में यजुर्वेद कण्ठस्थ कर लिया था। एक दिन शिवरात्री के पर्व पर शिव की मूर्ति के सामने उनके दर्शन की प्रबल इच्छा से सारी रात काट दी। शिव के दर्शन तो क्या होने थे, उन्होने देखा कि चूहे बिलो से निकल आये और मूर्ति पर चढ़े नैवेद्य को खाने लगे। यह देख मूलशंकर के हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न हुई ये कैसे देवता है जो चूहों से भी अपनी रक्षा नहीं कर सकते हैं उनकी इस शंका का समाधान कोई न कर सका। यही कारण है उन्होने मूर्ति पूजा का जबर्दस्त खण्डन किया।

ऋषि दयानन्द जी ने अनेक ग्रन्थ लिखे उनका मुख्य ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश है। उन्होने सामाजिक विचार धारा को क्रियात्मक रुप देने के लिये १० अप्रेल १८७५ में बम्बई के एक मोहल्ले गिरगांव में आर्य समाज की स्थापना की, आर्य समाज अपने जन्म काल से आज तक सामाजिक, धार्मिक तमाम बुराइयों को मिटाने के लिये चट्टान की तरह खडा है और आगे भी रहेगा। उन्होने संसार का कल्याण के लिये सत्यार्थ प्रकाश अमर ग्रन्थ की रचना करी।

अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश की भूमिका में महर्षि दयानन्द के विचार

यद्यपि आजकल बहुत से विद्वान प्रत्येक मतो में हैं, वे पक्षपात छोड कर सर्वतन्त्र सिद्धान्त अथार्त जो-जो बाते सबके अनुकूल सबमें सत्य है उनका ग्रहण और जो एक दूसरे के विरुद्ध बाते है, उनका त्याग कर परस्पर प्रगति से वर्ते-वर्त्तायें तो जगत का पूर्ण हित होवे, क्योंकि विद्वानों के विरोध से अविद्वानो में विरोध बढकर अनेक विधि दुख की वृद्धि और सुख की हानि होती है। इस हानि ने जो कि स्वार्थी मनुष्यो को प्रिय है सब मनुष्यों को दुख सागर में डुबा दिया है। इनमें से जो कोई सार्वजनिक हित लक्ष्य में घर प्रवृत होता है, उससे स्वार्थी लोग विरोध करने पर तत्पर होकर अनेक प्रकार विघ्न करते है परन्तु- **सत्यमेव जयति नानृतं सत्येन पन्था**

www.thearyasamaj.org

विततो देवयान:

सवर्दा सत्य का विजय और असत्य का पराजय और सत्य ही से विद्वानो का मार्ग विस्तृत होता है। इस दृढ निश्चय के आलम्ब से आप्त लोग परोपकार करने से उदासीन होकर कभी नहीं सत्यार्थ प्रकाश करने से हटते।

सत्यार्थ प्रकाश उत्तरार्द्ध: अनुभूमिका (१) से

मनुष्य जन्म का होना सत्यासत्य के निर्णय करने कराने के लिये है न कि वाद-विवाद विरोध करने कराने के लिये। इसी मतमतान्तर के विवाद से जगत में जो-जो अनिष्ट फल हुए होते है और होंगे उनकी पक्षपात रहित विद्वतजन जान सकते हैं जब तक इस मनुष्य जाति में परस्पर मिथ्या मतमतान्तर का विरुद्धवाद न छूटेगा तब तक अन्य का आनन्द न होगा। यदि हम सब मनुष्य और विशेष विद्वतजन ईष्या द्वेष छोड सत्या-सत्य का निर्णय करके सत्य का ग्रहण और असत्य का त्याग करना कराना चाहे तो हमारे लिये यह बात असाध्य नहीं है। यह निश्चय है कि इस विद्वानो के विरोध ने ही सबको विरोध जाल में फंसा रखा हैं यदि ये लोग अपने प्रयोजन में न फंस कर सबके प्रयोजन को सिद्ध करना चाहें तो अभी ऐक्यमत हो जायें।

महर्षि दयानन्द जी के देवत्य कार्य-शिष्य हो तो ऐसा हो

(१) वेदों के रुढ़ी अर्थों पर प्रहार कर निरुक्त शास्त्र के अनुसार ईश्वर परक अर्थ बताए। (२) रुढ़ीवाद पर प्रहार कर प्रत्येक क्षेत्र में रुढ़ीवाद पर प्रहार कर प्रत्येक क्षेत्र में रुढ़ीवाद को तिलान्जलि देने का नारा लगया। (३) सामाजिक क्षेत्र में रुढ़ीवाद पर प्रहार करके हिन्दु धर्म को रखते हुए उसके अन्दर से काया पलटने का कार्य किया। (४) राजनेतिक क्षेत्र में रुढ़ीवाद पर प्रहार करे, कोई कितना ही करे परन्तु जो स्वदेशी राज्य होता है वह सर्वोपरि उत्तम होता है। (५) समाजवादी विचार धारा पर प्रहार करके जाति-पाति, छुआ-छूत, उंच-नीच सामाजिक बताया। गुरुकुल शिक्षा प्रणाली में ही समाजवाद प्राप्त होना, आदि।

महर्षि दयानन्द जी भारत के १९ वी शताब्दि के सबसे महान सामाजिक विचारक थे उनकी छाप आने वाले सब विचारकों पर पडी। उन्होने अपने क्रान्तिकारी विचारो से युग में परिवर्तन कर दिया, आज जो हम स्वतन्त्रता एवं समाज में व्याप्त कुरुतियों के व्यापक अर्थ-अनर्थ को सोच समझ रहे है सब उनकी देन है, और इन विचारो को चिर स्थाई रखने के लिये अमर ग्रन्थ सत्यार्थ प्रकाश लिखा और आर्य समाज का गठन कर दिया महर्षि विरजानन्द जी एवं ऋषि दयानन्द जी के हम सदैव रिणी रहेंगे।

आज की आवश्यकता

संसार के सभी धर्माचायों को सत्य और सर्व हितकारी विषयों में एक मत होकर धर्मोपदेश करना चाहिए। आर्य समाज संगठन संसार के धर्माचार्यो का आवाहन करता है कि आइए हमारे साथ मिलकर जगत का उपकार करें।

गढ निवास मोहकमपुर, देहरादून
मो. : ९४१५५ १२०१९
२७ दिसम्बर २०१६

YOGA AND ALTERNATIVE THERAPY

The Workshop was Conducted at Arya Samaj Santacruz for 37 days on various diseases from 14-11-2016 to 30-12-2016, Total 33 Students attended. Same of the Students experience is given below.

1) Dr. Khurshed Vazifdar M.D. (Doctor) : I Find the course very useful and informative not only therapy but aslo gives a yoga plan for my day to day life. The Course is good and shri Raghavji definitely motivated me to join regular classes

2) Nita Rajani (Home Maker) : The course was really good with many Alternative Therapies like Acupressure, Mudras, Bandhas, Yoga, Pranayama. It helps to take care of Yourself and is benefitial in curing diseases. I Sincerely thanks Shri Raghavji & other Teachers.

3) Neha Shah MBA (Australia) : This course is thoroughly informative and in depth, The way Sir has explained Asanas, Mudras, Pranayama, Acupressare, Naurpothy, Diet etc. have helped me to better ralate to yoga for everyday living. I have learned techniques like neti, Vamana Dhouti, Shank Prakshalan Kriya with such case and excellent guidance and use the knowledge when I return back to Australia. Thank you Resp. Rajahavji & Teachers for your guidance & support.

4) Manju Khatri (Yoga Instructor) : I am glad that I have joined this course. Great Learning from Raghava Sir. Very well planned course and gives immense knowledge on how to tacke Various diseases. Yoga Way of life is Very well taught by Sir and other teachers with Advanced Diploma in Yoga. There was lot of practical knowledge and learning I achieved From Sir. I sincerily thanks Sir for giving us all information to the best of his ability. He patiently answered all our quarries. I strongly believe 'Health is wealth' and if any body course. I consider myself Very fortunate to be the student of such a great and knowled gable Sir Raghava Someshwarji.

Rekha Doshee (Yoga Teacher) : I have done Yog Teacher Training from Yoga Institute and many more health related courses from well known institutes, but I find this particular course is unique and well planned, especially learning from Sir gave me true sense of Knowledge and satisfaction It covers almost all diseases with Full package of remedies along with diet. Our Sir practically informatively, taught all kriyas for better understanding. Aum Meditation was again amazing experiene. I am greatful to Shri Raghavaji, I got privilege to learn from such knowledgeable Sir.

www.thearyasamaj.org

धर्म शहीद-बाल हकीकतराय

बसंत पंचमी आ गई फिर पावन त्यौहार।
आओ मिलकर के करें, इस पर आज विचार ॥
इस पर आज विचार, पर्व है सुनों निराला।
बाल हकीकतराय वीर था सचमुच भाला॥
धर्मवीर की आज सुनाएं, तुम्हें कहानी।
नयनों में आ रहा, हमारे है अब पानी ॥१॥

सारे भारतवर्ष में था मुगलों का राज।
प्रेता था अन्याय नित, था तब सुखी समाज।
था तब दुखी समाज दुखी ये सब नर-नारी।
मार रहे ये मौज, कुकर्मी अत्याचारी ॥
हिन्दुओं पर दमन चक्र, चलता था भारी।
विधर्मियों से तंग, यहां भी जनता सारी ॥२॥

एक रोज लाहौर का, पापी नीच नबाब।
बाल हकीकत पर यवन, देने लगा दबाव ॥
देने लगा दबाव, बात तू मान हकीकत।
मुसलमान बन शीघ्र करा मत व्यर्थ फजीहत ॥
सुनले बडा इनाम, हकीकत तू पाएगा।
अगर न मानी बात, मूढ़ मारा जाएगा ॥३॥

सुनकर दुष्ट नबाव की, वीर हकीकत बात।
बोला, पापी खूबकर, मनमाने उत्पात॥
मनमाने उत्पात, धर्मपथ ना छोंडूंगा।
लालच में फंस नेह, पाप से ना जोडूंगा॥
नाशवान तन, अमर-आत्मा है, संतापी।
ईश्वर को कर याद, पाप मत कर तू पापी ॥४॥

सुन यह दुष्ट नबाब ने, बुलवाया जल्लाद।
इसके सिर को दे उछा, सुना दिया इरसाद ॥
सुना दिया इरसाद, प्रभु का न खाया।
वीर हकीकत राय, नहीं किंचित दहलाया ॥
धर्म हेतु कुर्बान हुआ, योद्धा बलिदानी।
ना भूलेगा जगत, हकीकत की कुर्बानी ॥५॥

भारत पर कृपा करो, दयासिंधु भगवान।
वीर हकीकत से यहां भेजो वीर महान।
भेजो वीर मधन, काम जो जग के भाऐ।
बनें धैर्यवान, वेद-पथ को अपनाएं ॥
दानव दल का करें सामना, वीर, कहाऐ।
बनें राष्ट्र की शान, अमर जग में हो जाए ॥६॥

युग नायक महर्षि दयानन्द सरस्वती

युगनायक ऋषि दयानन्द की, शिक्षाओं को मानो।
करो वेदप्रचार जगत में, भारत के विद्वानों ॥

जगत गुरु ऋषि दयानन्द थे, ईश्वर भक्त निराले।
वेदो के विद्वान धुरन्धर देशभक्त मतवाले ॥
बालब्रह्मचारी तपधारी, संत अजब थे त्यागी।
शीलवन्त गुणवान दयामय थे अद्भुत वैरागी ॥

जीव मात्र के हित चिंतक को ठीक तरह तुम जानो।
करो वेद प्रचार जगत में, भारत के विद्धानो ॥१॥

वेदज्ञान को भूल गई थी, बिलकुल दुनियाँ सारी।
अधंकार में भटक रहें थे, दुनियाँ के नर-नारी ॥
चेतन की पूजा तज दी थी, जडपूजा की जारी।
लाखों गऊऐं रोजाना, जग में जाती थी मारी ॥

पढो सभी इतिहास पुराना, गलत ठान मत ठानो।
करो वेद प्रचार जगत में, भारत के विद्वानो ॥२॥

देव पुरुष ने कृपा की थी, सारे जग पर भारी।
कर्म प्रधान बताया ऋषि ने, समझाए नर-नारी ॥
दुर्गुन त्यागो सद्गुन धारो, बनकर परोपकारी।
छुआछातकी, ऊँच-नीच की, दूर करो बीमारी ॥

ऋषि ने गौ को मात बताया, ऋषि की शिक्षा मानो।
करो वेद प्रचार जगत में भारत के विद्वानो ॥३॥

भारत था परतंत्र जुलम करते थे गोरे भारी।
उनके जुलमों से आतंकित, थी तब जनता सारी ॥
स्वामी जी ने आजादी का, अनुपम पाठ पढाया।
अग्रेजों को मार भगाओं वैदिक मार्ग बताया ॥

धीर-वीर निर्भीक गुरु की, महानता पहचानो।
करो वेद प्रचार जगत में, भारत के विद्वानो ॥४॥

याद रखो यदि देव दयानन्द अमर न जग में आते।
ऋषियो कें वंशज दुनियां में ढूंढे से ना पाते ॥
राम कृष्ण के भक्त आर्य जन, दर दर धक्के खाते।
वेद शास्त्र रामायण गीता, के पाठक मिट जाते ॥
''नन्दलाल'' ऋषि दयानंद के गुण गाओ मर्दानों।
करो वेद प्रचार जगत में भारत के विद्वानो ॥५॥

पं. नन्दलाल निर्भय सिद्धान्ताचार्य भजनोपदेशक
आर्य सदन बहीन, जनपद पलवल (हरियाणा)
चल भाष क्रमांक- ०९८१३८४५७७४

www.thearyasamaj.org

वेदाध्ययन द्वारा आयु

आचार्य ब्र. नन्दकिशोर

स्तुता मया वरदा वेदमाता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानाम् ।
आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्मवर्चसम् ।
मह्यं दत्त्वा व्रजत ब्रह्मलोकम् ।।

अर्थव. १९/७/१

अर्थ-(मया) मेरे द्वारा (वरदा) वरों को देनेवाली (वेदमाता) वेदमाता (स्तुता) स्तुति की गई अर्थात् मैंने वेद-रूपी माता की गोद में बैठकर ज्ञान के रस का पान कर लिया है। (द्विजानाम्) विद्वान् ब्राह्मणों द्वारा गाई हुई (पावमानी) जीवन को पवित्र करने वाली पावमानी नाम की ऋचायें (प्रचोदयन्ताम) हम सबको शुभ कर्मों के लिये प्रेरित किया करे। हे विद्वानों, (मह्यम्) मुझको (दत्वा) इन सात वरों को देकर (ब्रह्मलोकम्) मोक्ष को (व्रजत) प्राप्त कीजिये। वे सात वर ये हैं- (आयुः) पूर्ण जीवन, (प्राण) जीवन शक्ति, (प्रजाम्) सन्तान, (पशुम्) गाय, बैल, घोड़ा आदि पशु, (कीर्तिम्) यश, (द्रविणम्) धन-धान्य, (ब्रह्मवर्चसम्) आध्यात्मिक तेज।

संसार में जितने भी कार्य हैं स्वाध्याय उन सब में श्रेष्ठ है, कठिन कार्य है, ऐसा जानकर जो स्वाध्याय करता है वह तत्त्व को जान लेता है। इसलिये स्वाध्याय करना चाहिए।

ऋग्वेद के ज्ञान-सूक्त में स्वाध्याय की महिमा इस प्रकार बतलाई गई है-

यस्तित्याज सचिविदं सखायं
न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति।
यदीं श्रृणोत्यलकं श्रृणोति
न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ।।

(ऋ. १०/७१/६)

(यः) जो व्यक्ति (सचिविदम्) परमेश्वर को प्राप्त कराने या उसका ज्ञान करवाने वाले (सखायम्) वेद के स्वाध्याय रुपी मित्र को (तित्याज) छोड़ देता है, (तस्य) उस व्यक्ति की (वाचि अपि) वाणी में भी (न भागो अस्ति कुछ भजनीय सेवनीय तत्त्व नहीं हैं (यत् ईम् श्रृणोति) वह जो कुछ सुनता है (अवलकम् श्रृणोति) सब मिथ्या ही सुनता है और (न हि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम्) वह सुकृत के, पुण्य के, मोक्ष के, मार्ग को नहीं जान सकता। इसलिये परमसुख मोक्ष की प्राप्ति के लिये वेदों का स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

स्वाध्याय का फल

यः स्वाध्यायमधीतेऽब्दं विधिना नियतः शुचिः।
तस्य नित्यं क्षरत्येष पयो दधि घृतं मधु ।।

जो मनुष्य विधिपूर्वक एक वर्ष तक शुद्ध एकाग्र चित्त होकर स्वाध्याय करता है उसको ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेदादि का ज्ञान अर्थात् ज्ञान, कर्म, उपासनादि का फल मिलता है। शतपथ ब्राह्मण में मधु तथा पय का अर्थ ऋचा और घृत का अर्थ साम किया है।

ऋग्वेद और सामवेद में स्वाध्याय के फल का वर्णन करने वाले ६ मन्त्र हैं जिन में स्वाध्याय के नाना लाभों का विस्तृत वर्णन किया है, उनमें से केवल ३ मन्त्र यहाँ उद्धृत किये जाते हैं-

पावमानीरध्येत्यृषिभिः सम्भूतं रसम् ।।

ऋ. ८/६७/३१, साम. उ. अ. १० कं. ६

पावमानी अर्थात् सब को पवित्र करनेवाले ईश्वर प्रदत्त एवं ऋषियों द्वारा सञ्चित ऋचाओं का जो अध्ययन करता है, वह पवित्र आनन्द रस का आस्वादन करता है।

पावमानीर्दधन्तु न इमं लोकमथो अमुम् ।
कामान् समर्धयन्तु नो देवीर्देवैः समाहृताः ।।

सा.उ.अ. १० ख. ६

पावमानी ऋचायें इस लोक और परलोक दोनों को धारण करने में हमारी सहायक हों, देव=उत्तम विद्वान् या श्रेष्ठ इन्द्रियों द्वारा प्राप्त करवाई हुई ये ऋचायें हमारी शुभकामनाओं को पूर्ण करें।

पावमानीः स्वस्त्ययनीस्ताभिर्गच्छन्ति नान्दनम्।
पुण्याँश्च भक्ष्यान् भक्षयत्यमृतत्वं च गच्छति।।

साम. उ. अ. १० ख. ६

ये पावमानी ऋचायें कल्याणकारिणी हैं, इनके द्वारा मनुष्य आनन्द को प्राप्त होते हैं, इन ऋचाओं का अर्थात् वेद का स्वाध्याय करनेवाला इस लोक में उत्तम भोग का उपभोग करता हुआ मोक्ष का अधिकारी बन जाता है। महर्षि पतञ्जलि ने स्वाध्याय का फल इस प्रकार लिखा है-

''स्वाध्यायादिष्ट देवतासम्प्रयोगः''

योगदर्शन २-४४

स्वाध्याय के द्वारा मनुष्य इष्टदेव=यथेच्छ शुभ गुण की प्राप्ति कर सकता है। कोई महापुरुष इस संसार में नहीं है किन्तु उसके ग्रन्थों का स्वाध्याय कर हम उस से, उसके विचारों से संगति कर यथेष्ट लाभ उठा सकते हैं। अतएव इस सूत्र का भाष्य करते हुए महर्षि ने लिख है- **''देवा ऋषयः सिद्धाश्च स्वाध्यायशीलस्य दर्शनं गच्छन्ति, कार्ये चास्य वर्तन्ते।''** विद्वान्, ऋषि-महर्षि आदि स्वाध्यायशील के दर्शन=ज्ञान में आते हैं और इसके कार्य को सिद्ध कर सकते हैं। अर्थात् उनके ग्रन्थों का स्वाध्याय कर स्वाध्यायवान् व्यक्ति अपने कार्य को सिद्ध कर लेता है।

महर्षि याज्ञवल्क्य ने लिखा है-

यद्यद्ध वायं छन्दस्यः स्वाध्यायमधीयते
तेन तेन हैवास्य यज्ञक्रतुनेष्टम्भवति,
तस्मात्स्वाध्यायोऽध्येतव्यः।

शतपथ. का. ११ अ. ५/७/१

स्वाध्यायशील मनुष्य जिस-जिस वेद का स्वाध्याय करता है उसको उस-उस वेद का वही फल मिलता है जो उस वेद से यज्ञ करने पर होता है, अतः स्वाध्याय अवश्य करना चाहिये।

www.thearyasamaj.org

चाणक्य नीति दर्पण

अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च।
वञ्चनं चाऽपमानं च मतिमान्न प्रकाशयेत्॥१॥

शब्दार्थ-अर्थनाशम् धन का नाश, **मन: तापम्** मन का सन्ताप **च** तथा **गृहे दुश्चरितानि** घर की बुराइयों, दोषों को **वञ्चनम्** किसी के द्वारा ठगे जाने को **च** और **अपमानम्** किसी के द्वारा हुए अपने अपमान को **मतिमान्** बुद्धिमान् **न प्रकाशयेत्** प्रकाशित, प्रकट न करे।

भावार्थ- बुद्धिमान् को चाहिए कि वह धन का नाश, मन का सन्ताप, घर के दोष, किसी के द्वारा ठगा जाना और अपमानित होना-इन बातों को प्रकाशित न करे, किसी के समक्ष न कहे।

विमर्श- उपर्युक्त बातों को आप जितना लोगों के सामने कहेंगे उतना ही अधिक आपका उपहास होगा, सहानुभूति कोई नहीं दिखाएगा। ये आपके निजी विषय हैं, अत: इन्हे गुप्त ही रखिए, इन्हें जितना छिपाकर रखेंगे उतना ही अच्छा है।

धन-धान्यप्रयोगेषु विद्यासंग्रहणेषु च।
आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्ज: सुखी भवेत्॥२॥

शब्दार्थ- धन-धान्यप्रयोगेषु धन और अन्न के व्यापार, क्रय-विक्रय में **च** तथा **विद्यासंग्रहणेषु** विद्या का संग्रह, सञ्चय करने में **आहारे** भोजन के विषय में च और **व्यवहारे** व्यवहार में **त्यक्तलज्ज:** लज्जा, संकोच न करनेवाला मनुष्य **सुखी** सुखी **भवेत्** होता है।

भावार्थ- धन-धान्य=अन्न के क्रय-विक्रय में, विद्या के संग्रह में आहार और व्यवहार में लज्जा न करनेवाला मनुष्य सुखी होता है।

विमर्श- लज्जा मनुष्य का भूषण है, विशेषरूप से स्त्रियों का, परन्तु कुछ बातें ऐसी भी हैं, जिनमें लज्जा नहीं करनी चाहिए, उन्हीं की श्लोक में गणना की गई है।

सन्तोषाऽमृत-तृप्तानां यत्सुखं शान्तचेतसाम्।
न च तद् धनलुब्धानामितश्चेतश्च धावताम्॥३॥

शब्दार्थ- सन्तोष-अमृत-तृप्तानाम् सन्तोषरूपी अमृत से तृप्त और **शान्त-चेतसाम्** शान्त चित्तवाले मनुष्यों को यत् जिस **सुखम** सुख की प्राप्ति होती **है, इत: च** इत:च इधर और उधर **धावताम्** दौड़ने और भटकनेवाले **धनलुब्धानाम्** धन के लोभियों को न च तत् वह सुख-शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती।

शब्दार्थ- सन्तोषरूपी अम्रृत से तृप्त और शान्तचित्तवाले मनुष्यों को जो सुख, शान्ति और आनन्द मिलता है, वह धन के लोभ से इधर-उधर भागनेवाले मनुष्यों को नहीं मिल सकता।

विमर्श- महर्षि पतञ्जलि ने ठीक कहा है-

सन्तोषादनुत्तमसुखलाभ:। -यो. २।४२

सन्तोष से सर्वश्रेष्ठ सुख की प्राप्ति होती है।

किसी कवि ने भी कहा है-

अर्थो करोति दैन्यं लब्धार्थो गर्वमपरितोष च।
नष्टधनश्चस शोक सुखमास्ते नि:स्पृह: पुरुष:॥

याचक दीनता प्रदर्शित करता है, धनी गर्व करता है तथा अधिक की इच्छा करता है, जिसका धन नष्ट हो गया है, वह शोक करता है, जो नि:स्पृह (सन्तोषी) है, वह सुखी रहता है।

सन्तोषस्त्रिषु कर्तव्य: स्वदारे भोजने धने।
त्रिषु चैव न कर्तव्योऽध्ययने तपदानयो:॥४॥

शब्दार्थ-स्वदारे अपनी पत्नी **भोजने** भोजन और **धने** धन-इन **त्रिषु** तीन वस्तुओं में **सन्तोष:** सन्तोष करना चाहिए **च एव** परन्तु **अध्ययने** अध्ययन करने **तपदानयो:** तप करने और दान देने- इन **त्रिषु** तीन बातों में सन्तोष **न** नहीं **कर्तव्य:** करना चाहिए।

भावार्थ- अपनी पत्नी भोजन और धन-इन तीन में सन्तोष करना चाहिए परन्तु अध्यायन, तप और दान-इन तीन में कभी सन्तोष नहीं करना चाहिए।

विमर्श- अपनी पत्नी में ही सन्तोष करना चाहिए-

न हीदृशमनायुष्यं लोके किञ्च विद्यते।
यादृशं पुरुषस्येह परदारोपसेवनम्॥- मनु. ४।१३४

इस संसार में मनुष्य की आयु को क्षीण करनेवाला और कोई वैसा कार्य नहीं है, जैसा दूसरे की स्त्री का सेवन करना, (अत: इसे सर्वथा त्याग देना चाहिए।)

यत्पृथिव्यां वीहियवं हिरण्यं पशव: स्त्रिय:।
नालमेकस्य तत्सर्वमिति पश्यन्न मुह्य ति॥

- विदुरनी . ७/८५

पृथिवी पर जितना धान, जौ, सोना, पशु और स्त्रियाँ है- वे सब एक मनुष्य के लिए भी पर्याप्त नहीं हैं- इस प्रकार विचार करनेवाला मनुष्य मोह में नहीं फँसता।

भोजन के विषय में सन्तोष करना चाहिए-

हित और मित भोजन करना चाहिए। दूसरे के भोजन को देख कर ललचाना नहीं चाहिए-

पेट की मोटर में भोजन की सवारी कम भरो।
फेल हो जाएगी ठूंसाठूंस भर जाने के बाद॥

महर्षि मनु ने कहा है-

अनारोग्यमनायुष्ममस्वर्ग्य चाति भोजनम्।
अपुण्य लोकविद्विष्टं तस्मात् तत्परिवर्जयेत्॥

अधिक खाना स्वास्थ्य को बिगाड़नेवाला, आयु को क्षीण करने वाला, दु:ख देनेवाला और दोनों लोकों को नष्ट करनेवाला है, अत: पेटूपन को त्याग देना चाहिए।

अपने धन के विषय में सन्तोष रखना चाहिए-

अधोऽध: पश्यत: कस्य महिमा नोपचीयते।
उपर्युपरि पश्यन्त: सर्व एव दरिद्रति॥

-हितो. २/२

अपने से नीचे की ओर देखनेवाले किस मनुष्य का गौरव नहीं बढ़

www.thearyasamaj.org

जाता? परन्तु अपने से ऊपर (अधिक धनवालों को) देखनेवाले सभी दरिद्र बन जाते हैं।

अपने से नीचे देखकर धन के विषय में सन्तोष धारण करना चाहिए। अध्ययन में सन्तोष नहीं करना चाहिए-

अजरामरवत् प्राज्ञो विद्यामर्थ च चिन्तयेत्।
ग्रहीत इव केशेष मृत्युना धर्ममाचरेत्।।

मनुष्य को अपने-आपको अजर और अमर समझते हुए विद्या और धन का उपार्जन करना चाहिए परन्तु मृत्यु ने मेरे केशों को पकड़ा हुआ है, पता नहीं यह कहाँ भटका मारेगी, ऐसा सोचकर धर्म का आचरण करना चाहिए।

दिवमारुहत् तपसा तपस्वी। अ. १३।२।२५

तपस्वी तप के द्वारा मोक्ष प्राप्त करता है।

महर्षि मनु ने कहा है-

यदु दुस्तरं दुरापं यद् दुर्गं यच्च दुष्करम्।
सर्व तु तपसा साध्यं तपो हि दुरतिक्रमम्।।

- मनु. ११।२३८

जो सुस्तर (कठिनता से पार होने योग्य) है, जो दुर्लभ (कठिनता से प्राप्त होने योग्य) है, जो दुर्गम (कठिनता से चलने=चढ़ने योग्य) है, जो दुष्कर (कठिनता से करने योग्य) है, वह सब तप से सिद्ध हो सकता है, क्योंकि तप से कुछ भी असाध्य नहीं है।.

दान खूब देना चाहिए। वेद में कहा है-

शतहस्त समाहर सहस्त्रहस्त संकिर। - अ. ३।२४।५

हे मनुष्य ! सौ हाथों से कमा और हजार हाथों से दान कर। महर्षि व्यास लिखते हैं

द्वावम्भसी निवेष्टव्यौ गले बद्ध्वा दृढा शिलाम्।
धनवन्तमदातारं दरिद्रं चातपस्विनम्।।

- महा. उद्यो. ३३।६५

दो मनुष्यों को गले में बहुत भारी शिला बाँधकर डुबा देना चाहिए- एक तो धनवान् होकर भी दान न देनेवाले कंजूस को, दूसरे पुरुषार्थ न करनेवाले दरिद्र को।

विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्यो: स्वामिभृत्ययो:।
अन्तरेण न गन्तव्यं हलस्य वृषभस्य च।।५।।

शब्दार्थ- विप्रयो: दो ब्राह्मणों के **च** तथा **विप्रवह्न्यो:** ब्राह्मण और अग्नि के **दम्पत्यो:** पति-पत्नी के **स्वामि-भूत्ययो:** स्वामी और सेवक के **हलस्य** हल के **च** और **वृषभस्य** बैल के **अन्तरेण** बीच में होकर न नहीं **गन्तव्यम्** जाना चाहिए।

भावार्थ- दो ब्राह्मण, ब्राह्मण और अग्नि, पति और पत्नी, स्वामी और सेवक तथा हल और बैल इनके बीच में से होकर नहीं निकलना चाहिए।

पादाभ्यां न स्पृशेदग्निं गुरु ब्राह्मणमेव च।
नैव गां न कुमारीं च न वृदं न शिशुं तथा।।६।।

शब्दार्थ-अग्निम् अग्नि को, **गुरुम्** गुरु को **च** और न न **ब्राह्मणम्** ब्राह्मण को **एव** ही **पादाम्याम्** पैरों से **स्पृशेत्** छूना चाहिए **न-एव** न ही **गाम्** गौ को **च** और न न **कुमारीम्** कन्या को न न **वृद्धम्** वृद्ध को **तथा** और न न **शिशुम्** शिशु को ही पैर से छूना चाहिए।

भावार्थ - अग्नि को पैर से छूने से पैर जल सकते है। गुरु, ब्राह्मण और वृद्ध पूज्य होते हैं, अत: इनको पैर नहीं लगाना चाहिए। कुमारी (कन्या) और शिशु छोटे होने पर भी आदरणीय हैं, ये भावी राष्ट्र के निर्माता हैं, अत: इन्हें भी पैर से नहीं छूना चाहिए। वेद में गौ को लात मारनेवाले के लिए दण्ड का विधान है-

यश्च गां पदा स्फुरति प्रत्यङ् सूर्य च मेहति।
तस्य वृश्चामि ते मूलं न छायां करवोऽपरम्।।

- अथर्व. १३।१।५६

जो मनुष्य गाय को लात मारता है, जो मनुष्य सूर्य की और मुख करके मल-मूत्र त्यागता है, ऐसे मनुष्य को मैं जड़मूल से नष्ट करता हूँ, जिससे वह पुन: ऐसे अपमानजनक कार्य न कर सके।

शकटं पञ्चहस्तेन दशहस्तेन वाजिनम्।
हस्ती शतहस्तेन देशत्यागेन दुर्जनम्।।७।।

शब्दार्थ-शकटम् छकड़ा, गाड़ी को **पञ्चहस्तेन** पाँच हाथ दूर से **वाजिनम्** घोड़े को **दशहस्तेन** दस हाथ दूर से **हस्ती** हाथी को **शतहस्तेन** सौ हाथ दूर से त्याग दे और **दुर्जनम्** दुर्जन को तो **देशत्यागेन** देश त्याग करके भी छोड़ देना चाहिए।

भावार्थ- गाड़ी से पाँच हाथ दूर रहना चाहिए, घोड़े से दस हाथ और हाथी से सौ हाथ दूर रहना चाहिए, दुर्जन से बचने के लिए तो देश का भी परित्याग कर देना चाहिए।

विमर्श - दुर्जन बड़ा भयंकर होता है, अत: उससे बचने के लिए देश भी छोड़ना पड़े तो छोड़ देना चाहिए। किसी ने ठीक ही कहा है-

खलानां कण्टकानां च द्विविधैव प्रतिक्रिया।
उपानान्मुखभङ्गं वा दूरतो व विसर्जनम्।।

दुर्जन और कण्टक=कौटे-इनका प्रतिकार दो प्रकार से ही किया जा सकता है या तो जूतों से इनका मुखमर्दन किया जाए अथवा दूर से ही त्याग दिया जाए।

हस्ती अंकुशहस्तेन वाजी हस्तेन ताड्यते।
श्रृङ्गी लगुडहस्तेन खड्गहस्तेन दुर्जन:।।८।।

शब्दार्थ-हस्ती हाथी **अंकुशहस्ते** हाथ में पकड़े हुए अंकुश से **वाजी** घोड़ा **हस्तेन** हाथ में लिए हुए चाबुक से **श्रृङ्गी** सींगवाला पशु **लगुडहस्तेन** हाथ में पकड़े हुए डण्डे से **ताड्यते** वश में किया जाता है, पीटा जाता है और **दुर्जन:** दुष्ट मनुष्य **खड्गहस्तेन** हाथ में ली हुई तलवार से मारा जाता है।

भावार्थ- हाथी हाथ में पकड़े हुए अंकुश से वश में किया जाता है, घोड़ा चाबुक से पीटा जाता है, सींगवाला पशु डण्डे से पीटा जाता है और दुर्जन मनुष्य हाथ में ली हुई तलवार से मारा जाता है।

तुष्यन्ति भोजने विप्रा मयूरा घनगर्जिते।
साधव: परसम्पतौ खल: परविपत्तिषु।।६।।

(शेष पृष्ठ १३)

www.thearyasamaj.org

साध्य-साधक-साधन का चिन्तन

ज्ञानेश्वर आर्य एम.ए. दर्शनाचार्य

साध्य (ईश्वर) का चिन्तन-

हे परमेश्वर आप सत् हैं, अर्थात एक सत्तात्मक पदार्थ हैं। आप चित् हैं, अर्थात चेतन हैं, सब कुछ जानते हैं। आप आनन्दस्वरूप हैं, आप कभी भी दु:खी नहीं होते । आप निराकार है, आपकी कोई आकृति, रंगरूप या मूर्ति नहीं हैं। आप सर्वशक्तिमान् हैं, संसार को बनाने, पालने, विनाश करने तथा जीवों को कर्म फल देने में आप किसी की सहायता नहीं लेते। आप न्यायकारी हैं, जो मनुष्य जैसा (अच्छा या बुरा) और जितना कर्म करता है, उसे वैसा व उतना ही फल देते हैं। हे प्रभो, आप दयालु हैं, आपने सब प्राणियों पर दया करके उन्हें सब प्रकार के सुख साधन प्रदान किये हैं। आप अजन्मा हैं अर्थात् जीवों के समान शरीर से संयोगरुपी जन्म नहीं लेते हैं। आप अनन्त है, अर्थात् आप की विशालता की कोई सीमा नहीं है। आप निर्विकार हैं, जैसे शाक, फल आदि जड़ पदार्थों में गलना-सड़ना, घटना-बढ़ना होता है वैसे विकार आप में नहीं होते। हे परमेश्वर ! आप अनादि है, आपकी उत्पत्ति कभी भी नहीं हुई। आप अनुपम हैं, आपके समान-ज्ञान-बल-आनन्दवाली और कोई वस्तु नहीं है। हे प्रभो ! आप सर्वाधार हैं, आप ब्रह्माण्ड में स्थित पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, आकाश-गंगा आदि सब पदार्थों के आधार हैं। हे देव आप सर्वेश्वर है, संसार में जितने भी धन, सम्पत्ति, ज्ञान, बल, ऐश्वर्य, वृक्ष-वनस्पति, ग्रह-उपग्रह आदि पदार्थ हैं, उन सब के आप ही स्वामी हैं। आप सर्वव्यापक हैं, संसार के प्रत्येक सूक्ष्म से सूक्ष्म परमाणु और आत्मादि में तथा स्थूल से स्थूल सूर्यादि पदार्थों में आप विद्यमान है। हे प्रभो, आप सर्वानतर्यामी है, आप सब में विद्यमान होकर सब का नियंत्रण करते है। हे परमेश्वर ! आप अजर हैं, कभी भी वृद्ध-बूढ़े (शक्तिहीन) नहीं होते। आप अमर है, कभी भी मरते नहीं है। आप अभय हैं, आपको, कभी भी किसी से किञ्चित् मात्र भय नहीं लगता है। आप नित्य हैं, सदा से है और सदा रहेंगे। हे प्रभो! आप पवित्र है अर्थात् न तो आप में अविद्या है और न आप कभी पाप कर्म करते हैं। हे परमेश्वर! आप सृष्टिकर्ता हैं, आप ही ने इस दृश्यमान् और अदृश्यमान् संसार को बनाया है। हे दयानिधान ! संसार में केवल आप ही उपासना करने योग्य है, अन्य कोई वस्तु उपास्य नहीं है। आप हम पर कृपा कीजिये, जिससे हम आप की नित्य दोनों समय उपासना कर सकें और आपसे ज्ञान, बल, आनन्द, निर्भयता, प्राप्त करके, अपने जीवन को सफल बना सकें।

साधक (=जीव) का चिन्तन -

हे परमेश्वर ! सत्-चित्-स्वरूप आत्मा हूँ, शरीर नहीं हूँ। यह शरीर तो मेरा निवास स्थान है। मैं इस शरीर में, हृदय में रहता हूँ। यह शरीर तो मरण-धर्मा है, किन्तु मैं नित्य, अजर, अमर हूँ। हे प्रभो ! जीव, न स्त्री हूँ, न पुरुष हूँ और न ही नपुसंक हूँ। आप मुझे जिस शरीर के साथ जोड़ देते है, उस शरीरवाला कहा जाता हूँ। हे परमात्मन् ! मेरा इस शरीर के साथ सम्बन्ध अनित्य है और शरीर के समान माता, पिता, भाई, बहन आदि सम्बन्धियों के साथ भी सम्बन्ध है। इस शरीर के छूट जाने पर ये सांसारिक सम्बन्ध भी छूट जाते हैं। आदि सृष्टि से लेकर अब तक न जाने कितने ही आत्माओं के साथ मेरा सम्बन्ध बना और टूटा है। न जाने कितने व्यक्तियों का मैं पिता बना, माता बना, पुत्र-पुत्री बना, भाई-बहन बना और न जाने मैने कितनी बार अपने कर्मफलानुसार पशु-पक्षियों के शरीर धारण किये होंगे। इन सब की गणना करना भी असंभव है। हे प्रभो ! मैं जीव अत्यन्त अणुरूप हूँ और एकदेशी हूँ। मेरा अपना ज्ञान भी बहुत थोड़ा है। आप द्वारा शरीर, मन व इन्द्रियों आदि को प्राप्त करने पर ही मै अपने स्वरूप को जानने में और कर्मों को करने में समर्थ होता हूँ। हे परमात्मन् ! आपने मुझे विविध साधन प्रदान करके भी कर्म करने में स्वतंत्रता दी है। मैं अपनी इच्छा से अच्छे-बुरे कर्मों को करने, न करने में स्वतंत्र हूँ, किन्तु उन कर्मों का फल भोगने में आपकी न्याय-व्यवस्था के आधीन रहता हूँ। अपने द्वारा किये गये अच्छे-बुरे कर्मो के फल से बच नहीं सकता, कभी न कभी अवश्य ही भोगना पड़ता है। इन कर्म-फलों का उत्तरदायित्व मुझ पर ही है, मन, बुद्धि, शरीरादि पर नहीं है। हे देव ! जैसे मैं आत्मा हूँ, वैसे ही समस्त संसार के प्राणी भी आत्माएँ हैं। स्वरूप से समस्त से समस्त आत्माओं में कोई भेद नहीं है। जो भेद दिखाई देता है, वह शरीर, बुद्धि, ज्ञान, बल, कर्मो आदि के कारण से है। हे परमात्मन् ! जब तक मुझ में अविद्या (राग-द्वेष-मोह) है, तब तक मैं इस जन्म मरण के चक्र से छूट नहीं पाऊँगा। हे प्रभो ! अब तो मैं आपको प्राप्त करना चाहता हूँ, क्योंकि मैंने पढ़ा है, सुना है कि जो जीव आपकी अनुभूति-साक्षात्कार कर लेता है, वह समस्त दु:खो से छूटकर, आपके परमानन्द का भागी बन जाता है। अत: हे प्रभो! अब तो मुझे ज्ञान, बल, आनन्द प्रदान करके कृतकृत्य कीजिये, इसी उद्देश्य को लेकर अब मैं आपकी उपासना करने बैठा हूँ। आप दया के भण्डार हैं, मेरी इस आशा को शीघ्र ही सफल करेंगे ऐसा मुझे विश्वास है।

साधन (= संसार) का चिन्तन-

हे परमेश्वर! जो यह संसार हमें दिखाई दे रहा है, यह आपको प्राप्त करने का साधन है। इस संसार का मूल कारण 'प्रकृति' है। प्रकृति अत्यन्त सूक्ष्म परमाणुओं का नाम है। ये परमाणु तीन प्रकार के है। इनका नाम 'सत्त्वगुण'. 'रजोगुण' और 'तमोगुण' है। ये तीनों प्रकार के परमाणु जड़ है, इनमें ज्ञान नहीं है। ये परमाणु अनादि और अनन्त है, अर्थात् न कभी उत्पन्न हुए न नष्ट होंगे। हे प्रभो ! आप इन्हीं सूक्ष्म परमाणुओं को लेकर अपनी अनन्त शक्ति और ज्ञान से इस दृश्यमान् सृष्टि को बनाते है। सर्वप्रथम इन परमाणुओं को जोड़कर महत्त्व=बुद्धि नामक पदार्थ को बनाते है, जिसके सहयोग से हम बाह्य और आन्तरिक विषयों को ज्ञान करते है, तत्पश्चात् महत्तत्व से 'अहंकार' नामक पदार्थ को बनाते है, जिससे जीवात्मा अपने अस्तित्व-सत्ता की अनुभूति करता है। हे परमेश्वर ! जो आप अहंकर से १६ पदार्थ बनाते है, वे पदार्थ निम्न है- पाँच मानेन्द्रियाँ (=घ्राण, चक्षु, श्रोत्र, त्वक् और रसना), पाँच कर्मेन्द्रियाँ (=हस्त, पाद, वाक, गुदा, उपस्थ) पाँच तन्मात्राएँ (=सूक्ष्म भूत) जो कि गन्ध तन्मानत्र, रुप तन्मात्र, शब्द तन्मात्र, स्पर्श तन्मात्र और रस तन्मात्र हैं। सोलहवां मन बनाते हैं, जिससे हम संकल्प-विकल्प आदि अनेक प्रकार के कार्य करते है। हे भगवन ! फिर

www.thearyasamaj.org

..... पाँच तन्मात्राओं से आप पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और आकाश इन पाँच स्थूल भूतों का निर्माण करते है। इन्हीं पाँच स्थूल भूतों के संयोग से आप, मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग आदि प्राणियों के शरीर बनाते हैं तथा इन्हीं भूतों से सूर्य, पृथ्वी, चन्द्र आदि विभिन्न नक्षत्र ग्रह उपग्रह बनाते है। ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष तक यह संसार बना रहता है और ४ अरब ३२ करोड़ वर्ष तक यह संसार अपने कारणरूप (=प्रकृति) में रहता है, जिसे प्रलय अवस्था कहते हैं। हे कृपालु देव ! आपने यह संसार दो प्रयोजनों की सिद्धी के लिए बनाया है। एक भोग, दूसरा अपवर्ग। हे प्रभो ! सशरीर इस संसार में रहते हुए हम जीव पूर्ण और स्थिर सुख को कदापि प्राप्त नहीं कर सकते। संसार के समस्त पदार्थों में जो सुख लेता है उसको परिणाम, ताप आदि चार प्रकार के दु:खों को अवश्य ही भोगना पड़ता है। प्रभो! न जाने कितने वर्षों से मैं इस घोर संसार में नाना योनियों को प्राप्त करके, जन्म मरण इत्यादि दारुण दु:खों को भोगता आया हूँ। अब तो आपसे मेरी विनम्र प्रार्थना है कि मुझे ज्ञान, बल, सामर्थ्य प्रदान करो, जिससे मैं मुक्ति के मार्ग की ओर प्रवृत्त होऊँ और आपकी अमृतमयी गोद में बैठकर पूर्ण व स्थायी सुख को प्राप्त करूँ।

पृष्ठ ११ से चालू....

शब्दार्थ-विप्रा: ब्राह्मण **भोजने** भरपेट भोजन मिलने पर **तुष्यन्ति** सन्तुष्ट होते हैं, **मयूरा:** मोर **धनगर्जिते** बादलों के गर्जने पर प्रसन्न होकर नाचने लगते हैं, **साधव:** सज्जन लोग **परसम्पतौ** दूसरे को धन-धान्य से सम्पन्न देखकर प्रसन्न होते हैं और **खला:** दुष्ट लोग **पर-विपत्तिषु** दुसरों की विपत्ति में प्रसन्न होते हैं।

भावार्थ- ब्राह्मण भरपेट भोजन मिलने पर, मोर बादलों के गर्जने पर, सज्जन दूसरों की सम्पत्ति में और दुष्ट दूसरों की विपत्ति में प्रसन्न होते हैं।

विमर्श- खल दूसरों की विपत्ति में प्रसन्न होता है। किसी ने ठीक ही कहा है-

यथा परोपकारेषु नित्य जागति सज्जन:।
तथा परापकारेषु जागति सततं खल:।।

जैसे सज्जन दूसरों का उपकार करने में सदा जागरूक= सावधान रहता है, वैसे सी खल= दुष्ट दूसरों का अपकार करने के लिए सदा तैयार रहता है।

अनुलोमेन बलिनं प्रतिलोमेन दुर्जनम्।
आत्मतुल्यबलं शत्रुं विनयेन बलेन वा।।१०।।

शब्दार्थ-बलिनम् बलवान् शत्रु को **अनुलोमेन** उसके अनुकूल व्यवहार करके **दुर्जनम्** दुष्ट को **प्रतिलोमेन** उसके प्रतिकूल व्यवहार करके वश में करना चाहिए और आत्मतुल्यबलम् अपने समान बलवाले शत्रुम् शत्रु को **विनयेन** विनय से **वा** अथवा **बलेन** बल से जीते, वश में करे।

भावार्थ- बलवान् शत्रु उसके अनुकूल व्यवहार करके, दुष्ट शत्रु को उसके प्रतिकूल व्यवहार करके तथा अपने समान बलवाले शत्रु को विनय अथवा बल से जीतना या वश में करना चाहिए।

एक याचना

इस जीवन को सफल बना लूँ
मेरे ईश्वर मुझे ऐसी शक्ति दो।

बहुत कार्य हैं अभी करने को
कठिन राह है अभी चलने को
पाँव डगमगा रहे, हे मेरे रक्षक
तव चरणों में मोहे भक्ति दो।

जब बढ़ता हूँ , रुक जाता हूँ
चलते चलते मैं थक जाता हूँ
माया जाल में फंस जाता हूँ
विषय वासना से विरक्ति दो।

योग का मार्ग हमें बतला दो
यम - नियम हमें सिखला दो
स्थित - प्रज्ञ में स्थित करा दो
ज्ञान - ध्यान में अनुरक्ति दो।

बड़े भाग्य से ये नर तन पाया
नश्वर देह पर मैं क्यों इठलाया
भौतिकवाद में मन बहलाया
आवागमन से मोहे मुक्ति दो।

संदीप आर्य

वेदो में चिकित्सा विज्ञान
दिनांक : १८ से १९ मार्च २०१७

वैदिक मिशन मुब्बई की ओर से आर्य समाज सान्ताक्रुज़ में १८-१९ मार्च को हृदय रोग, मधुमेह, रक्तचाप, कैसंर, मानसिक रोग आदि व्याधियों के विषय में संगोष्ठी का आयोजन किया जा रहा है। जिसमें प्रतिप्तित चिकित्सक (ऐलोपैथी, आयुर्वेदिक, होम्योपैथी, प्राकृतिक) एंव वैदिक विद्वान भाग ले रहे हैं।

आप अधिक से अधिक संख्या में भाग लेकर लाभ प्राप्त करें।

धन्यवाद

संदीप आर्य
मन्त्री- वैदिक मिशन मुम्बई

www.thearyasamaj.org

क्या हम भाग्य को बदल सकते हैं?

प्रो. सत्यव्रत सिद्धान्तालंकार

मेरे एक मित्र हैं जिनके साथ मैं घूमने जाया करता हूँ। भिन्न-भिन्न विषयों पर चर्चा हुआ करती है, परन्तु एक विषय ऐसा है जो उन्हें कभी छोड़ता नहीं। हर बात में हेर-फेर करके उसी पर आ जाते हैं। उनका कहना है कि जो-कुछ होता है वही करता है, उसकी मर्जी के बगैर कुछ नहीं होता। और जब वे यह बात कह रहे होते हैं तब वे आसमान की तरफ हाथ उठा लेते हैं और कहते जाते हैं- वही करता है बस, वही करता है- मनुष्य कुछ नहीं करता। वे अपनी बात इस निश्चय से कहते हैं, मानो उसको, जिसे वे ऊपरवाला कहते हैं, वे जानते हैं। मैं जब पूछता हूँ, यह ऊपरवाला कौन है, तब उनका कहना होता है- कोई भी हो, दीखता हो न दीखता हो, करता सब वही है, उसी के हुक्म से सब-कुछ होता है। ३१ अक्टूबर १९८४ को भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती गांधी की दो हत्यारों ने हत्या कर दी। हम लोग घूमने जा रहे थे। मैंने पूछा- यह हत्या भी तुम्हारे उस ऊपरवाले ने की। वे जरा भी नहीं हिचकिचाये और भट बोल उठे-उसी ऊपरवाले का हुक्म था, तभी यह दुर्घटना हुई। ऊपरवाले के हुक्म के बिना पत्ता तक नहीं हिलता। भारत जैसे महान देश के प्रधानमन्त्री की हत्या हो जाना साधारण घटना नहीं थी। मैं भी सोच में पड़ गया। सुरक्षा के कितने प्रबन्ध थे! आगे-पीछे, दायें-बायें, भीतर-बाहर सब प्रकार के प्रबन्धों के रहते हुए एक ऐसी घटना हो जाना किसकी स्वप्न में भी कल्पना नहीं की जा सकती थी-मन ने कहा यह सब तभी हो सकता है जब हम मान लें कि अपने बस में कुछ नहीं, कोई और ही शक्ति है जो विश्व की महान् घटनाओं का संचालन कर रही है। एक आदमी गोलों की बौछार में बाल-बाँका हुए बिना साफ निकल आता है, दूसरा एक काँटा लगने पर ही जन्म के लिए बेकार हो जाता है- यह सब क्यों है, कैसे है? क्या यह सब-कुछ ऊपरवाला ही करता है?

सब-कुछ ऊपरवाला ही करता है- यह बात कुछ अटपटी-सी लगती है, परन्तु अपने देश में और विदेशों में भी, इस विचार को माननेवाले अनेक हैं। जब मनुष्य देखता है कि उसके सामने अनेक अनहोनी घटनाएँ हो जाती हैं, ऐसी घटनाएँ जिनका सिर-पैर नहीं, जिनका कोई कारण समझ नहीं आता, तो वह हर बात का जिम्मेदार ऊपरवाले को कहने लगता है। परन्तु सोचने की बात है कि हर बात की जिम्मेदारी ऊपरवाले की क्यों मानी जाय? कहीं चोरी हो गई, कहीं डाका पड़ गया, कहीं कत्ल हो गया-क्या यह सब-कुछ ऊपरवाला करता है? मनुष्य इन सब घटनाओं से अपने को बचाने के लिए जिम्मेदारी ऊपरवाले पर डालने का प्रयत्न करता है। ऊपरवाले को क्या पड़ी है कि किसी से चोरी कराये, किसी के घर डाका डलवाये, किसी से कत्ल करवाये? जो लोग ऐसे विचार रखते है उनकी दृष्टि में दुनिया एक तमाशा है, ऊपरवाले का खेल है। सत्य यह है कि संसार इस प्रकार का खेल-तमाशा नहीं। यहाँ सब-कुछ नियमानुसार किसी लक्ष्य को लेकर चल रहा है। उपरवाले की बात सर्वथा निस्सार है।

भारत के मनीषियों ने जीवन की समस्याओं पर सोचते-सोचते ऊपरवाले के अतिरिक्त एक अन्य सिद्धान्त की भी निखारा था जिसे कर्म का सिद्धान्त कहा जाता है। इस सिद्धान्त की जड़ में एक दूसरा सिद्धान्त काम कर रहा है जिसे कारण-कार्य का सिद्धान्त कहते हैं। जो भी कार्य है उसका कोई कारण होता है, जो कारण है उसका कोई कार्य होता है। इस सिद्धान्त को आस्तिक-नास्तिक सब मानते है। कारण-कार्य के सिद्धान्त का कर्म के सिद्धान्त से यह सम्बन्ध है कि जीवन में हम जो कर्म करते हैं, वह कारण है, उसका हमें जो फल मिलता है वह 'कार्य' है। साधारणतया जीवन में यह सिद्धान्त कारगर होता हुआ दीखता है, तभी हम अच्छे या बुरे कर्म में प्रवृत्त होते है। अगर कर्म के सिद्धान्त में, इस बात में हमें निश्चय न हो कि जो कुछ हम करेंगे उसका हमें फल अवश्य मिलेगा, तो दिनभर हम कर्म करने में जूटे क्यों रहते है? हम सवेरा होते ही किसी-न-किसी काम में जुट जाते हैं, जीवनभर ऐसा करते हैं, और काम कर चुकने के बाद फल की आशा करते हैं। फल की आशा तभी की जा सकती है जब हमें विश्वास हो कि हमने जो कर्म किया है उसका फल अवश्य मिलेगा, क्योंकि कारण-कार्य के अटल नियम में हमें विश्वास है।

परन्तु कई घटनाएँ ऐसी भी हो जाती हैं जिन्हें देखकर हमारा कर्म के सिद्धान्त पर विश्वास डॉवाडोल हो जाता है। एक व्यक्ति के नाम हाथ-पैर हिलाये बिना एक लाख की लाटरी निकल आयी, एक व्यक्ति का घोड़ा रेस में दस लाख रुपया जीत लाया, एक व्यक्ति ने जन्म ही राजा के घर लिया, एक व्यक्ति बिना कोई कुकर्म किये कोढ़ी के घर पैदा हो गया- सौकड़ो अवसर आते हैं जिनमें हमने कुछ नहीं किया, परन्तु दुःख हम भोग रहे हैं। जो जन्म से राजा के घर पैदा हुआ उसने क्या पुण्य किया था जो पैदा ही राजा के घर हुआ? जो जन्म से ही गरीब के घर पैदा हुआ, उसने इस जन्म में क्या पाप किया था जो पैदा ही भिखारी के घर हुआ? कर्म का फल भोगने से पहले तो वह पैदा ही नहीं हुआ था। ऐसे अनेक दृष्टान्त मिल जायेगे जिनमें व्यक्ति ने कोई भी अच्छा काम नहीं किया किन्तु दुःख भोगने के बजाय वह सुख भोग रहा है, और कई लोग ऐसे मिल जायेंगे जो जीवन भर पुण्य का काम करते रहे परन्तु सुख भोगने के बजाय वे जीवन-भर दुःख ही भोगते रहे। इसका उत्तर भी सोचनेवालों ने सोच रखा है। वे कहते है कि यह सब पूर्व-जन्म का फल है। पुनर्जन्म का सिद्धान्त कर्म की उस विषम समस्या का हल ढूंढता है जिसका उल्लेख हमने अभी किया है। अगर इस जन्म में हम बिना हाथ पैर हिलाये सुखी हैं, तो इसका कारण यह है कि पिछले जन्म में हमने अच्छे कर्म किये थे। अगर इस जन्म में हम बिना किसी कारण के दुःखी है तो इसका कारण यह है कि पिछले जन्म में हमने कुछ बुरे कर्म किये थे। इस सारी विचारधारा का अभिप्राय यह है कि हम जो-कुछ हैं, या तो इस जन्म के किये गए कार्यों से हैं, या पिछले जन्म के किये कार्यो से हैं। इस तथा पिछले जन्म में हमने जो अच्छे कर्म किये उनसे हम सुखी हैं, जो बुरे कर्म किये उनसे हम दुःखी है। इसका अभिप्राय यह भी है कि हम जो-कुछ हैं या जो-कुछ कर रहे है उस में हम कर्म के बंधन से बँधे हुए है, हम जो-कुछ है वह किस्मत का, दैव का परिणाम है- इस जन्म के कर्म या पिछले जन्म के कर्म से हम जो-कुछ बन सकते थे वही बने है, इससे भिन्न हम बन ही नहीं सकते थे, हमारे साथ जो-कुछ हो रहा है वह होना ही था, विधि का विधान था, वह टल नहीं सकता था।

संसार में जो विषमता हम देखते हैं उनका हल मिलना चाहिए।

www.thearyasamaj.org

विषमता के मुख्य तौर पर दो हल है। एक हल दिव्य-शक्ति को इसका कारण मानता है, दूसरा कर्मों को इसका कार मानता है। दिव्य-शक्ति या परमेश्वर इस विषमता का कारण है, इसका अभिप्राय यह है कि जो-कुछ हो रहा है, भगवान् की इच्छा से हो रहा है। वह जिसे चाहे सुखी बना दे, जिसे चाहे दु:खी बना दे। जिस पर वह प्रसन्न हो गया उस पर सुखों की वर्षा कर दी, जिस पर वह अप्रसन्न हो गया उससे उसके पास जो कुछ है वह भी छीन लिया। भगवान् की जो आराधना करते हैं, उसके कर्म कैसे ही क्यों न हों, 'भगवत्कृपा' से वे भव्य-सागर की कठिनाइयों को पार कर जाते हैं, भगवान् जिससे रुष्ट हो जाते हैं उसे तबाह कर देते है। इस विचार में कर्म को वह स्थान नहीं जो भगवत्कृपा को स्थान है। यह **भक्ति मार्ग** का रास्ता है, परन्तु यह बात बुद्गिम्य नहीं है कि कर्म भले ही कैसे करो, भगवान् की भक्ति करो- इससे भव-सागर तर लिया जाता है। अगर यह कहा जाय कि भक्त कभी बुरा काम नहीं करता और भक्त अच्छा ही काम करता है, तब भगवत्कृपा भी व्यक्ति के कर्म को कृपा का आधार बना लेती है।

संसार में जो विषमता हम देखते है उसका दूसरा कारण हमारे कर्म है। कर्म को दो भागों में बाँटा जा सकता है- 'देव' और 'पुरुषार्थ'। देव को बोल-चाल की भाषा में भाग्य कहते हैं, किस्मत कहते हैं, तकदीर कहते हैं। लोग भाग्य के ही फेर में रहा करते हैं, पुरुषार्थ की भी बात इस सिलसिले में ही करते हैं कि पुरुषार्थ से भाग्य बदला जा सकता है या नहीं। न बदलनेवाली वस्तु भाग्य है, किस्मत है। हम अवसर सुना करते हैं कि भाग्य में जो लिखा है वह मिटाये मिट नहीं सकता। लोग हाथ की रेखाएँ दिखाते हैं, जन्म-पत्री दिखाते हैं, माथे की लकीर की बात करते हैं। यह सब-कुछ इसलिए किया जाता है क्योंकि हमारा विश्वास है कि सबका भाग्य, सबकी किस्मत निश्चित है, उसे कोई बदल नहीं सकता। जन्म-पत्री मिलाते हुए यह देखा जाता है कि लड़के-लडकी के जन्म के ग्रह मिलते हैं या नहीं। किस्मत पर हम सबका इतना भरोसा है कि अगर कोई अनहोनी बात हो गई तो हम किस्मत को ही दोष देते हैं। लाटरी मिल गई तो किस्मत, बना-बनाया खेल बिगड़ गया तो किस्मत। कर्म से किस्मत बनती है- यह ज्ञानमार्ग या कर्ममार्ग का रास्ता है। किस्मत माननेवालों का कहना है कि जो किस्मत बन गई वह बन गई, उसे बदला नहीं जा सकता।

परन्तु किस्मत बनती कैसे है? या तो परमात्मा अपनी मर्जी से कुछ को अच्छी किस्मत देकर पैदा करता है, कुछ को बुरी किस्मत देकर पैदा करता है। यह तो परमात्मा पर दोष देना है, उसे अन्यायी मानना है। ऐसा परमात्मा जो कुछ को आसमान पर चढ़ा दे, कुछ को नरक में पटक दे, किस काम का? परमात्मा के विषय में तो सबका विचार यह है कि यह न्यायकारी है, फिर यह अन्याय क्यों? या यह मानना पड़ेगा कि जो व्यक्ति अच्छे कर्म करते हैं वे अच्छी किस्मत लेकर पैदा होते हैं, जो बुरे कर्म करते हैं वे बुरी किस्मत लेकर पैदा होते हैं। परन्तु यह अच्छी या बुरी किस्मत बनने का कारण क्या है?

हम इस जन्म में जो-कुछ हैं वह पिछले जन्म की किस्मत का परिणाम है। अर्थात्, पिछले जन्म में हमने जो-कुछ किया था उससे हमारी इस जन्म की किस्मत बन गई। एक व्यक्ति राजा के घर पैदा हुआ, दूसरा रंक के घर पैदा हुआ राजा के घर जो पैदा हुआ उसने पिछले जन्म में जो कर्म किये थे यह जन्म उनका परिणाम है; रंक के घर जो पैदा हुआ वह भी पिछले जन्म में किये हुए बुरे कर्मो का परिणाम है। अगर यह बात है, तो चलिए पिछले जन्म में चले। उस पिछले जन्म में हम जो-कुछ कर रहे थे या हमने जो-कुछ किया उसे करने में हम स्वतन्त्र थे या नहीं थे? अगर स्वतन्त्र थे तो यह 'पुरुषार्थ' हो गया, अगर स्वतन्त्र नहीं थे तो पिछला जन्म उससे पिछले जन्म का परिणाम होगा। अगर पिछला जन्म भी उससे पिछले जन्म में किये हुए कर्मो का परिणाम है तो उस पिछले जन्म में हम स्वतन्त्र थे। किसी-न-किसी समय हम कर्म करने में स्वतन्त्र थे, तभी हमारा भाग्य बना, अन्यथा पहले-पहले भाग्य बन कैसे सकता था? भाग्य बनता ही तब है जब हम कर्म करने में स्वतन्त्र होते हैं। अगर हम कभी स्वतन्त्र कर्म कर ही नहीं सकते तो भाग्य बन ही नहीं सकता। यह तो मानना ही पड़ता है कि किसी समय बिना भाग्य से बंधे स्वतन्त्र रुप में हमने कर्म किया जिसका परिणाम भाग्य बना अब प्रश्न यह रह जाता है कि अगर हम किसी भी जन्म में कर्म करने में स्वतन्त्र हैं अपने पुरुषार्थ से, बिना भाग्य से बंधे कर्म कर सकते हैं तो इस जन्म में हम कर्म करने में स्वतन्त्र क्यों नहीं हैं? अगर हम कभी कर्म करने में स्वतन्त्र थे, तो जैसे हमने स्वतन्त्र कर्म द्वारा इस जन्म के अपने भाग्य को बनाया, वैसे ही अपने स्वतन्त्र कर्म से भाग्य को बदल भी क्यों नहीं सकते? सारी समस्या का केन्द्र-बिन्दु यह है कि हम बिना भाग्य से बंधे स्वतन्त्र रूप से कर्म कर सकते हैं या नहीं? जब भाग्य का निर्माण ही तब हो सकता है जब हम कर्म करने में स्वतन्त्र हों, तब स्वतन्त्र रूप में कर्म कर सकना अवश्यम्भावी हो जाता है। इसी प्रकार अगले जन्म का भाग्य भी तभी बनता है, जब इस जन्म में कर्म करने में हम स्वतन्त्र हों, अन्यथा अगले जन्म की जरूरत ही नहीं रहती। अगर पुरुषार्थ न माना जाय, और किस्मत को ही सब-कुछ माना जाय, तो इस जन्म में किस्मत के रूप में हमने जो-कुछ भोगा उसके कर्म का चक्कर समाप्त हो गया, क्योंकि इस जन्म में हमने स्वतन्त्र रूप से कोई कर्म किया ही नहीं जिससे अगले जन्म की अच्छी या बुरी किस्मत बने।

संक्षेप में कहा जाय, तो हम कह सकते हैं कि किस्मत को मानना स्वतन्त्र पुरुषार्थ को माने बगैर हो ही नही सकता, क्योंकि किस्मत पुरुषार्थ से ही बनती है। पुरुषार्थ का अर्थ है मनुष्य का कर्म करने में स्वतन्त्र होना। जिस व्यक्ति ने वैदिक संस्कृती को ''स्वतन्त्र कर्ता''- इस सिद्धान्त का प्रदान किया था उसने इस संस्कृति को एक महामन्त्र दिया था, जैसे न्यूटन ने विज्ञान के क्षेत्र को गुरुत्वाकर्षण-शक्ति के आविष्कार का प्रदान किया था। 'किस्मत' के बोझ से लदी मानव-जाति को इस बोझ को परे फेंकने का साहस 'पुरुषार्थ' के सिद्वान्त से ही प्राप्त हुआ।

परन्तु इतना कह देने मात्र से हमारी कर्म की समस्याओं का अन्त नहीं हो जाता। यह बात तो ठीक है कि हम कर्म करने में स्वतन्त्र हैं, परन्तु यह वात भी उतनी ही ठीक है कि हम कर्म करने में उतने ही परतन्त्र भी हैं। हम लाख कोशिश करते है, परन्तु फेल हो जाते है; दूसरा कुछ नहीं करता परन्तु पास हो जाता है। हर व्यक्ति का जीवन ऐसी घटनाओं से भरा पड़ा है, जो उसे यह मानने को बाधित करती हैं कि उसके बस में कुछ नहीं है। दूसरी तरफ उसके जीवन में ऐसी भी घटनाएँ घटी हैं जब सब विपत्तियों का उस अकेले ने अपने साहस से- अपने पुरुषार्थ से-सामना किया, और उन विपत्तियों के आल को, जिनमें से निकल सकना असभ्भव था, एक झटके में परे फेंक दिया। हमारे सामने किस्मत की भी घटनाएँ हैं, पुरुषार्थ की भी घटनाएँ हैं। इन दोनों के बीच में से एक रास्ता दिशा-निर्धारण का गीता ने निकाला है जिसे

www.thearyasamaj.org

नूतन निष्काम पत्रिका वर्ष-८ अंक-१ मुम्बई जनवरी - २०१७ पृष्ठ-१६ मूल्य- रु. ९/-

पौष २०७२ (२०१७) Post Date : 25-01-2017 MCN/136/2016-2018 MAHRIL 06007/31/12/18-TC पोष्ट आफिस : सांताक्रुज़ (प.)

आर्य समाज सान्ताक्रुज मुम्बई का मुखपत्र

संपादक : **संगीत आर्य**

मुद्रक एवं प्रकाशक : **चन्द्रपाल गुप्त द्वारा कृष्ण प्रिंटिंग प्रेस,** २६, मंगलदास रोड, मुंबई-२. से मुद्रित कराकर आर्य समाज भवन, वी. पी. रोड, (लिंकिंग रोड़), सान्ताक्रुज़ (प.) मुंबई-४०० ०५४. से प्रकाशित किया। दूरभाष : २६६० २८००/२६६०२०७५

प्रति, _____

निष्काम-कर्म कहते हैं। भारतीय संस्कृति का कर्म का त्रिकू इन तीन के बीच में घूमता है- **भाग्य, पुरुषार्थ, निष्काम-कर्म।**

यह पक्की बात है कि अनेक घटनाओं का हल केवल भाग्य है। एक भिखमंगे को एक लाख की लाटरी मिलगई- यह भाग्य नहीं तो क्या है? परन्तु यह भी पक्की बात है कि भाग्य का निर्माण पुरुषार्थ से होता है। इस जन्म का, या पिछले जन्म का पुरुषार्थ ही तो भाग्य बनता है। इस दृष्टि से भाग्य तथा पुरुषार्थ दोनों सही सिद्धान्त हैं, परन्तु इन दोनों को सही मानने के लिए पूर्वजन्म तथा पुनर्जन्म को मानना आवश्यक है क्योंकि जिस अनहोनी घटना का सम्बन्ध इस जन्म से न हो उसका सम्बन्ध पूर्व जन्म से ही हो सकता है, इसी प्रकार इस जन्म का परम पुरुषार्थ अगर इस जन्म में फलप्रद न हो तो यह किस्मत बनकर अगले जन्म में प्राप्त होगा- यह मानकर ही संतोष लेना पड़ेगा। परन्तु अगर किसी घटना को पिछले जन्म के स्वतन्त्र कर्म और अगले जन्म की किस्मत से भी न जोड़ा जा सके, तब जो सिद्धान्त टिक सकता है वह निष्काम-कर्म का सिद्धान्त है।

पिछला जन्म था या नहीं था- यह कौन जानता है? अगला जन्म होगा या नहीं- यह भी कौन जानता है? हमारा पिछला जन्म था तथा अगला जन्म होगा-अगर ये दोनों बातें निश्चित हैं- तब तो हमने किस्मत तथा पुरुषार्थ के विषय में जो-कुछ लिखा है वह आत्म-सन्तोष के लिए काम आ जाता है, क्योंकि हमने जो-कुछ लिखा है उसका अभिप्राय है कि किस्मत भी होती है, पुरुषार्थ भी होता है, पुरुषार्थ से ही किस्मत बनती है। पूर्वजन्म या पुनर्जन्म हो या न हो, इस बात से कोई इन्कार नहीं कर सकता कि यह जन्म तो है ही। दो बातें निश्चित हैं- पहली बात यह है कि वर्तमान जन्म है, दूसरी बात यह है कि वर्तमान जन्म है, दूसरी बात यह कि मनुष्य पुरुषार्थ करता है क्योंकि स्वतन्त्र किये हुए कर्म से ही किस्मत बनती है। इन दो बातों को निश्चित मानकर जीवन का मार्ग निश्चित करना होगा। वह मार्ग क्या है?

हम जो काम करते हैं उसका कुछ अच्छा फल होगा- यह सोचकर करते हैं। कभी अभिलषित फल मिलता है, कभी नहीं; कभी, उलटा ही फल निकल आता है तो ऐसी हालत में हमें दु:ख होता है। कर्म की गहराई में जानेवालों का कहना है कि कर्म तो करो परन्तु फल की आशा न करो। फल की आशा करने पर जब अभिलषित फल नहीं मिलता तब दु:ख होता है। फल की आशा न करने को वे निष्काम-कर्म कहते हैं। उनका कहना है कि गीता का यही उपदेश है। परन्तु यह फिजूल-सी बात लगती है। फल के लिए ही तो कर्म किया जाता है, फिर फल की आशा क्यों न करें? क्यों न करें? क्या गीता के निष्काम-कर्म का यह अर्थ है, और क्या इसी फिजूस-सी बात के लिए गीता प्रसिद्ध हुई है? नहीं, गीता के निष्काम-कर्म का यह अर्थ नहीं है। तो फिर, गीता के निष्काम-कर्म का क्या अर्थ है? निष्काम-कर्म की व्याख्या करते हुए गीता में कहा है-

कर्मण्ये वाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन।
मा कर्मफलहेतुर्भू: मा ते संगोऽस्त्वकर्मणि ।। - २।४७

इस का अर्थ यह है कि ऐ मनुष्य, तेरा अधिकार कर्म करने में तो है परन्तु फल में तेरा अधिकार नही। गीता में कहा गया है कि फल की आशा नहीं रखनी चाहिए, परन्तु फल पर अधिकार रखना सीमा से बढ़ जाना है। आशा रखना और अधिकार रखना- इन दोनों में भेद है। कर्म करना हमारे हाथ में है, फल देना दूसरे के हाथ में है। बालक इम्तिहान देता है- उसके हाथ में है, परिणाम देना परीक्षक के हाथ में है। परीक्षक जब परिणाम देता है तब उसके दो रूप हो सकते है। एक रूप तो वह है जिसकी हम अपने किये कर्म के अनुसार आशा रख सकते हैं। कर्म करना हमारा 'पुरुषार्थ' था, उसका जैसा हम फल चाहते थे वैसा मिल जाना हमारा 'भाग्य' कहा जायगा जो हमारे कर्म का अवश्यम्भावी परिणाम था। परन्तु यह भी ही सकता है कि हमें हमारा अभिलषित फल न मिले। क्यो न मिले- इसका हमारे पास कोई उत्तर नहीं। हम केवल इतना कह सकते हं कि संसार का अनुभव यह बतलाता है कि कभी-कभी अनहोनी घटनाएँ होती है, ऐसी घटनाएँ जिनके सामने कारण-कार्य का नियम फेल हो जाता है। जब हमारा पुरुषार्थ सर्वथा पंगु हो जाता है, हम लाख कोशिश करते हैं परन्तु कुछ बनता नहीं, तब दोनों हाथ नीचे डालकर, सिर झुकाकर कहना पड़ता है कि संसार में ऐसी भी घटनाएँ बढ़ती है जिनका हमारे पास कोई समाधान नही, जो न पुरुषार्थ के सिद्धान्त से हल होती है, न भाग्य के सिद्धान्त से हल होती है, जो हमें किसी प्रकार हल होती नहीं प्रतीत होती। उस स्थिति में जिस सिद्धान्त की शरण लेनी पड़ती है उसी के गीता ने कहा है- **'निष्काम कर्म'** का सिद्धान्त। निष्काम-कर्म के सिद्धान्त का अर्थ है- मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है, फल भोगने में परतन्त्र है, फल-प्राप्ति की पूर्ण आशा से मनुष्य कर्म में भरपूर शक्ति के साथ प्रवृत्त हो, क्योंकि उसे जो जन्मजात स्वतन्त्रता मिली है उसके आधार पर उसका कर्म करने में पूरा अधिकार है- **'कर्मण्येवाधिकारस्ते'** परन्तु अगर उसका वांछित फल उसे न मिले तो उसे शान्त भाव से समझ लेना चाहिए कि फल-प्राप्ति का क्षेत्र उसके हाथ में नहीं है, किसी दूसरी शक्ति के हाथ में है। इसी विचार से मनुष्य को शान्ति मिलती है- कर्म करते चलो, फल मिलेगा, तकदीर भी बदलेगी; न मिला, तकदीर न बदली, तो उस शक्ति के सामने सिर झुका दो जो विश्वात्म शक्ति है क्येंकि उसकी सर्वव्यापी दृष्टि में केवल तुम्हीं नहीं हो, सब समाये हुए है, उसे तुम्हीं को नही सभी को सम्भालना है।

❑❑❑